

## दूसरा अध्याय

दलित कविता : भावभूमि और विचारभूमि

## दलित कविता : भावभूमि और विचारभूमि

दलित कविता क्या है? कब से शुरु हुआ है? दलित कविता की परिभाषा क्या है? दलित कौन है? दलित साहित्य क्या है? आदि प्रश्नों को लेकर विद्वानों में मत भेद हैं। मत भेद होते हुए भी दलित कविता की अलग पहचान और अस्तित्व को बहुत विद्वान मानते हैं, वस्तु एवं शिल्प की दृष्टि से, भाव एवं विचार की दृष्टि से।

### २.१ दलित कविता क्या है?

दलित कविता वह कविता है जो दलितों के जीवन संघर्ष की सच्चाई को व्यक्त करती है साथ में वर्ण, वर्ग, जाति विहीन समता मूलक समाज की स्थापना करना चाहती है। भारतीय समाज व्यवस्था में दलितों की स्थिति, अस्मिता, मुख्यधारा से इसका मेल और पहचान आदि चेतना की अभिव्यक्ति को दलित कविता के द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। यह मुख्यधारा के समान्तर कविता है। दलित कविता की भावभूमि और विचारभूमि को सही ढंग से पहचानने के लिए दलित शब्द के अर्थ को परिभाषित करना संगत लगता है, विशेषकर आधुनिक सन्दर्भ में।

### २.१.१ दलित शब्द : अर्थ एवं परिभाषा

दलित शब्द व्यापक अर्थबोध की अभिव्यंजना देती है। दलित विशेष तौर पर सामाजिक विषमता का शिकार है। दलित शब्द उस व्यक्ति के लिए प्रयोग होता है जो समाज-व्यवस्था के तहत सबसे निचली पायदान पर है। वर्ण-व्यवस्था ने उसे अछूत या अन्त्यज की श्रेणी में रखा। दलित शब्द के अन्तर्गत कुचले गए, दबाए गए लोगों के जीवन की कहानी उतनी ही पुरानी है जितनी भारतीय हिन्दू संस्कृति की। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चार वर्णों पर आधारित चातुर्वर्ण्य व्यवस्था ऋग्वैदिक काल से लेकर अद्यतन जातियों की श्रेष्ठता क्रम में विद्यमान है। वेदों, स्मृतियों, पुराणों में व्यक्त जीवन

पद्धति वर्णव्यवस्था पर टिकी हुई है। लगभग २००ई पू. से २००ई सन के बीच शूद्रों की स्थिति का ज्ञान मनु के विधि ग्रंथ 'मनुस्मृति' से प्राप्त होता है। मनु ने अपने ग्रंथ में शूद्रों के प्रति घोर अमानवीयता का परिचय दिया है। मनुस्मृति के अष्टमोऽध्याय में इसका उदाहरण मिलते हैं-

“शतं ब्राह्मणकाक्रुश्य क्षत्रियो दण्डमर्हति ।

वैश्येऽप्यर्धशतं द्वे वा शूद्रस्तु वधमर्हति”<sup>१</sup> ॥ (२६७)

अर्थात: ब्राह्मण को गाली देने पर क्षत्रिय पर सौ पणों का और वैश्य पर डेढ़ सौ पणों का दण्ड लगाना चाहिए। शूद्र को तो प्राणदण्ड ही देना चाहिए।

धर्मोपदेशं दर्पण विप्राणामस्य कुर्वतः ।

तत्तमासेचयेत्तैलं वक्रे श्रोत्रे च पार्थिवः”<sup>२</sup> ॥ (२७१)

अर्थात: शूद्र द्वारा अहंकारवश ब्राह्मणों को धर्मोपदेश देने का दुस्साहस करने पर राजा को उसके मुँह और कान में गरम तेल डलवा देना चाहिए।

भारत में लगभग पचास-साठ साल से 'दलित' शब्द का प्रयोग हो रहा है। दलित शब्द आधुनिक है पर 'दलितपुन' प्राचीन है। विभिन्न समय पर डिप्रेस्ड क्लासेज़, अस्पृश्य, शूद्र, अन्त्यज दलित आदि शब्दों का प्रयोग किया गया, लेकिन ये सभी शब्द दलित शब्द के ही पर्याय हैं। 'दलित' शब्द किसी जाति या वर्ण का परिचायक नहीं, अपितु इसका अर्थ है पीड़ित, शोषित, वंचित या उपेक्षित मनुष्य। महाराष्ट्र प्रान्त के औरंगबाद में २४ से २७ फरवरी, १९८४ ई. को पहला अखिल भारतीय दलित नाट्य सम्मेलन हुआ, जिसके अध्यक्ष पद में बोलते हुए प्रसिद्ध दलित नाटककार श्री.भि. शिन्दे

१ डॉ. रामचन्द्र वर्मा शास्त्री (टीकाकार), मनुस्मृति, पृ. ३११.

२ वही, पृ. ३१२.

ने 'दलित' शब्द की व्याख्या करते हुए कहा था वह उल्लेखनीय है। दलित के अन्तर्गत "भारतीय समाज का वह भाग जिसे अस्पृश्य या अछूत समझा जाता है, बहुत ही कम वेतन या मज़दूरी में जो चौबीसों घण्टे खेतों में श्रम करने के लिए मज़दूर हैं और शोषित है, दुर्गम पहाड़ों, जनों, जंगलों में जीने के लिए मज़बूर जन-जातियाँ, आदिवासी समाज, पूँजीवादी व्यवस्था के कारण आर्थिक दृष्टि से जो दुर्बल है वह बहुजन समाज, राष्ट्रीय कहकर जिन्हें हमने नकारा है, वह अल्पसंख्यक (मुस्लिम, ईसाई) समाज।"<sup>१</sup>

"दलित- शब्द की व्युत्पत्ति संस्कृत की 'दल' धातु से हुई है। जिसका अर्थ तोड़ना, हिस्से करना, कुचलना है। इसके विभिन्न अर्थ हैं- दलित-दल-त, टूटा हुआ, कटा हुआ, पिसा हुआ, खुला हुआ, फैला हुआ है।"<sup>२</sup> आजकल दलित वर्ग का प्रयोग, हिन्दू समाज व्यवस्था के अन्तर्गत परम्परागत रूप से शूद्र मानी जाने वाली जातियों के लिए रूढ़ हो गया है। सबसे पहले श्रीमती एनीबेसेण्ट ने इस वर्ग के लिए 'डिप्रेसड कास्ट' शब्द का प्रयोग किया। बाद में स्वामी विवेकानन्द और रानाडे ने इनके लिए 'दलित' शब्द का प्रयोग किया। महात्मा गांधीजी ने इनके लिए 'हरिजन' शब्द का प्रयोग किया, जिसे आज निषिद्ध कर दिया गया है। भारतीय संविधान में इस वर्ग को अनुसूचित कहा गया है। डॉ. बाबा अम्बेडकर ने अंग्रेज़ी में डिप्रेसड व मराठी में 'बहिष्कृत' तथा 'अस्पृश्य' शब्द जिन लोगों या जिन जातियों के लिए इस्तेमाल किये, मराठी व हिन्दी साहित्य में उन्हें 'दलित' कहा जाता है। इस दायरे में व्यावहारिक रूप से यही लोग अधिक आते हैं जिन्हें, भारतीय संविधान में अनुसूचित जाति का दर्जा दिया गया है।

---

१ डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी, *दलित साहित्य रचना और विचार*- पृ.८४ (से उद्धृत)

२ डॉ. भरतद्वज, *संस्कृत- अंग्रेज़ी- हिन्दी शब्दकोश*, पृ. १२६.

## ‘दलित’ शब्द कोशकारों की दृष्टि में

विभिन्न शब्द कोशों में ‘दलित’ शब्द का अर्थ इस प्रकार है-

१. “दल (अक) विकसना, फटना, खण्डित होना, द्विधा होना।  
दल-(सक) चर्ष करना, टुकड़े करना, विराटना।  
दल-(नपृ) सैन्य, लशकर, पत्र, पत्ती।
२. दल- (दलति, दलित) दलित- टू वस्ट, ओपन स्प्लिट क्लेब, क्रंक

दलित-हृदयं गाठो द्वेगं द्विधा तू न विद्यते। (वेदनाओं के कारण हृदय के टुकड़े होते हैं, नाश नहीं)। दलित-पी.पी. ब्रोकन, टार्च, बस्ट, रेण्ट, स्लिट।”<sup>१</sup>

हिन्दी शब्दकोशों में भी दलित शब्द का अर्थ- विनष्ट किया हुआ ऐसा ही दिया हुआ है। जैसे-

“दलित —(वि.सं.) स्त्री दलिता

१. मसला हुआ, मर्दित
२. दबाया, रौंदा या कुचला हुआ।
३. खण्डित, दरिद्र और पीडित
४. विनष्ट किया हुआ।

दलित वर्ग पुं (सं) समाज का वह वर्ग है जो सबसे नीचा माना गया हो या दुःखी या दरिद्र हो और जिसे उच्च वर्ग के लोग उठने न देते हो, जैसे भारत की छोटी या अछूत मानी जाने वाली जातियों का वर्ग।”<sup>२</sup>

---

१ विल्यम्स मोनीर, *संस्कृत अंग्रेज़ी शब्दकोश*, पृ. ४७१.

२ आचार्य रामचन्द्र वर्मा, *प्रामाणिक हिन्दी कोश*, पृ. ३८३.

डॉ. भोलानाथ तिवारी ने दलित शब्द का अर्थ इस प्रकार किया है-

१. “दलित-कुचला हुआ, मर्दित, मसला हुआ, रौंदा हुआ।
२. पस्त हिम्मत, हतोत्साह
३. अछूत, जनजाति, डिप्रेस्ड क्लास”<sup>१</sup>

संस्कृत- शब्दकोश में दलित शब्द का आशय:-

“दलित- दब + कत

१. टूटा हुआ, चीरा हुआ, फाड़ा हुआ, फटा हुआ, टुकड़े-टुकड़े हुआ।
२. खुला हुआ, फैलाया हुआ।”<sup>२</sup>

हिन्दी शब्द कोशों ने ‘दलित’ शब्द को “कुचला हुआ, दबाया हुआ, नष्ट किया हुआ”<sup>३</sup> अर्थ दिये हैं।

हिन्दी -तमिल -अंग्रेज़ी त्रिभाषा कोश तथा हिन्दी-सिन्धी-अंग्रेज़ी त्रिभाषा कोश में भी ‘दलित’ शब्द का अर्थ इस प्रकार है।

“दलित - वि. १.जो कुचला, दला या रौंदा गया हो, २. जो दबाया गया हो या जिसे पनपने या बढ़ने न दिया गया हो, हीन अवस्था में पड़ा हुआ।

Crushed, Down- trodden, depressed

---

१ डॉ. भोलानाथ तिवारी, *हिन्दी पर्यायवाची कोश*- पृ.२७०.

२ वामन शिवराम आपटे (सं) *संस्कृत हिन्दी शब्द कोश*, पृ. ४५१.

३ डॉ. हरदेव बाहरी, *हिन्दी शब्द कोश*, पृ. ३८६।

दलित वर्ग - पु. समाज का वह निचला वर्ग जो उच्च वर्ग के लोगों के उत्पीड़न के कारण आर्थिक दृष्टि से बहुत ही हीन अवस्था में हो। depressed class"<sup>१</sup>

बृहत् शिक्षार्थी हिन्दी - अंग्रेज़ी शब्दकोश में

“दलित - १.Oppressed or down trodden (person) depressed (man)

२. member of scheduled caste

दलित वर्ग - depressed class, scheduled caste

दलित - 1 Poverty, penury, destitution २.nastiness, dirtiness"<sup>२</sup>

अंग्रेज़ी में दलित शब्द के लिए 'Subaltern' शब्द का प्रयोग होता है, जिसका अर्थ है, "A Subaltern is some one with a low ranking in a social, political or other hierarchy. It can also mean some one who has been marginalized or oppressed."<sup>३</sup> The term 'subaltern' in the context is an allusion to the work of Antonio Gramsci. "It refers to any person or group of inferior rank and station, whether because of race, class, gender, sexual, orientation, ethnicity or religion"<sup>४</sup>.

दलित किसे माना जाए इस सम्बन्ध में प्रमुखतः दो प्रकार के मत हैं। संकुचित अर्थ धार्मिक ग्रन्थ, सामाजिक व्यवस्था आदि के कारण है जिसके अन्तर्गत चतुर्थ-वर्ण (शूद्र) में आने वाली जातियों को आधार बताया जाता है, जबकि व्यापक अर्थ में ये उन

---

१ जिल्द: १ हिन्दी - तमिल- अंग्रेज़ी त्रिभाषा कोश- पृ. ९२१।

२ डॉ. हरदेव बाहरी, बृहत् शिक्षार्थी हिन्दी - अंग्रेज़ी शब्द कोश, पृ. ८११ (vol-1)

३ Vocabulary.com/dictionary

४ wikipedia

सभी के लिए यह शब्द प्रयोग में आता है, जिन्हें किसी न किसी प्रकार से दबाया गया हो फिर चाहे ये किसी भी जाति, वर्ण या सम्प्रदाय के हो। दलित एक गतिशील शब्द है, जो एक खास सामाजिक सांस्कृतिक पहचान को सूचित करता है। इस प्रकार दलित शब्द की समाजशास्त्रीय सीमा और अर्थबोध अत्यन्त व्यापक है।

विभिन्न विचारकों ने दलित शब्द की विभिन्न परिभाषाएँ की हैं। डॉ. अम्बेडकर ने दलित शब्द को अस्पृश्य के स्थान पर अपनाया। अस्पृश्य शब्द की जो व्याख्या उन्होंने 'The untouchable' नामक अपने अंग्रेज़ी ग्रंथ में दिया है। डॉ. अम्बेडकर ने- “गिरिजन, विभुक्त जातियों, अपराधी घोषित की हुई जातियों ex-criminal tribes (denotifide) और अछूत इन तीनों समुदायों को अस्पृश्य (दलित) कहा है।”<sup>१</sup> डॉ.अम्बेडकर के अनुसार- “दलित जातियाँ वे हैं जो अपवित्रकारी होती हैं। इसी श्रेणी में कारीगर, धोबी, मोची, भंगी, बसौर, सेवक जैसे जार डंगारी (मरे हुए पशु को उठाने वाले) साऊरी, ढोला आते हैं। कुछ जातियाँ परम्परागत कार्य करने के अतिरिक्त कृषि, मज़दूरी का कार्य करती हैं। दलित शब्द करुणा या पश्चाताप को नहीं बल्कि वे वजह दमन और अपमान का शिकार होने के स्वाभाविक रोष को व्यक्त करता है।”<sup>२</sup>

दलित शब्द का प्रचार प्रसार दलित पेंथर आन्दोलन द्वारा हुआ। दलित पेंथर इस शब्द को १९७२ के मानिफेस्टो में इस प्रकार परिभाषित किया है- "A member of scheduled castes and tribes, neo-budhist the working people, the landless and poor peasants, women's and all those who are being exploited politically, economically and in the name of religion"<sup>३</sup> डॉ. श्यौराज सिंह बेचैन दलित शब्द की

१ Dr. Ambedker, Untouchable; who have they and how they become untouchable, Bhim Pathrika, Pub. Jalandhar, 1948.

२ डॉ. माता प्रसाद, हिन्दी काव्य में दलित काव्यधारा, पृ.३ (से उद्धृत)

३ Sanjay Paswan, Paramanshi Jaideva (ed.) Encyclopedia of Dalits in India, p.25



की व्याख्या करते हुए कहते हैं - “दलित वह है जिसे भारतीय संविधान ने अनुसूचित जाति का दर्जा दिया है”।<sup>१</sup>

डॉ. अंबेडकर ने अस्पृश्य (untouchables) के लिए Depressed classes, Schedules castes और servile castes इन शब्दों का प्रयोग किया है। दलित वह शोषित मानव है जो पैदा हुआ तब भी दलित है, जो जिन्दा रहेगा और जो मरेगा तब भी दलित ही है। नामदेव ढसाल का कहना है- “अनुसूचित जातियाँ, बौद्ध, श्रमिक, मज़दूर, भूमिहीन, कृषक व भटकने वाली सभी जातियाँ, दलित हैं।”<sup>२</sup>

डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर के अनुसार, “दलित शब्द एक इतिहास है, सामाजिक दर्पण है, सर्वहाराओं का चीत्कार है। अस्मत्, अस्मिता, असमानता और अनाचार विवेचक है।”<sup>३</sup> केशव मेश्राम के अनुसार- “हज़ारों वर्ष जिन लोगों पर अन्याय हुआ ऐसे अछूतों को दलित कहना चाहिए।”<sup>४</sup> केवल भारती का मानना है कि “दलित वह है जिस पर अस्पृश्यता का नियम लागू किया गया है। जिसे कठोर और गन्दे कार्य करने के लिए बाध्य किया गया है। जिसे शिक्षा ग्रहण करने और स्वतन्त्र व्यवसाय करने से मना किया गया और जिस पर अछूतों ने सामाजिक निर्योग्यताओं की संहिता लागू की, वही और वही दलित है, और इसके अन्तर्गत वही जातियाँ आती हैं, जिन्हें अनुसूचित जातियाँ कहा जाता है।”<sup>५</sup> मराठी कवि नारायण सुर्वे का कहना है कि, “दलित शब्द की मिली- जुली परिभाषाएँ हैं, इसका अर्थ केवल बौद्ध या पिछड़ी जातियाँ ही नहीं, समाज में

---

१ डॉ. श्यौराज सिंह बेचैन, *युद्धरत आम आदमी अंक*, ४१-४२, १९९८, पृ. १४।

२ नामदेव ढसाल, ‘आम्ही’, दीपाली अंक, १९७३, पृ. ७७।

३ डॉ. सोहनपाल सुमनाक्षर, *दलित साहित्य की हुंकार- सात समुद्र पार*, पृ. ४३।

४ केशव मेश्राम, ‘अस्मितादर्श’, १९७५, पृ. २४।

५ डॉ. केवल भारती, ‘युद्धरत आमआदमी’, अंक, ४१, ४२, वर्ष १९९८, पृ. ४१।

जो भी पीड़ित हैं, वे दलित हैं।”<sup>१</sup> डॉ. रणसुभे जी कहते हैं- “दलित का अर्थ है जो सामाजिक दृष्टि से पूर्णतः उपेक्षित हैं, जो वर्ण तथा जाति-व्यवस्था के अन्तर्गत सबसे आखिरी सीढ़ी पर खड़ा है, जो शोषित है, पीड़ित है, श्रमिक है, आदिवासी है, जिसकी अपनी कोई पहचान नहीं बन पाई है और जिसके अस्तित्व को भी स्थापित वर्ग ने नकारा है। जिसकी अस्मिता को सतत रौंदा जाता है- वह दलित है। इस अर्थ में यह शब्द और उसका आशय बहुत ही व्यापक है। ऐसे नकारे हुए श्रमिक, दलित, पीड़ित, शोषित मनुष्य को उसके न्याय अधिकार दिलवाने हेतु जो भी चिंतन प्रस्तुत किया जाए वह मनुष्य की मुक्ति का चिंतन होगा।”<sup>२</sup> इस परिभाषा में या चिंतन में व्यापकता है, मनुष्य को सही संदर्भ में समझने का प्रयास है। ‘दलित’ शब्द का अर्थ और दलित समुदाय पर विचार करते हुए डॉ. मैनेजर पाण्डेय ने लिखा है “दलित का अर्थ पराधीन स्थिति में रहनेवाले लोगों से हैं तो उसके भीतर गाँधी के हरिजन, इस देश में आदिवासी और स्त्रियाँ सब शामिल हैं। लेकिन जब दलित शब्द का प्रयोग कर रहा है तो मेरे ध्यान में वे हैं जिन्हें भारतीय वर्ण-व्यवस्था में शूद्र कहा जाता है या जिन्हें समाज में अछूत माना जाता है। केवल उन्हें दलित मान रहा हूँ जो जाति से दलित”<sup>३</sup>

डॉ. सुनीता साखरे के अनुसार-“ भारतीय सनातनी सामाजिक वर्ण व्यवस्था में निचली श्रेणी का वर्ण और उससे संबंधित विभिन्न जातियाँ और वर्ण व्यवस्था में बाहर जीने वाली जन जातियाँ जो हिन्दू व्यवस्था में परंपरा से अछूत, सांस्कृतिक दृष्टि से व्याज्य घोषित, आर्थिक दृष्टि से शोषित और सामाजिक दृष्टि से उपेक्षित, बहिष्कृत

१ नारायण सुर्वे, हंस, अक्तूबर, १९९२, पृ. २३।

२ मधुमती: अप्रैल-मई २०१०, पृ. ४४

३ युद्धरत आम आदमी-दलित चेतना विशेषांक-३१, पृ. १८०

समाज है वह दलित कहलाता है।”<sup>१</sup> डॉ. शरणकुमार लिंबाले ने दलित शब्द का प्रयोग व्यापक अर्थ में किया है “दलित केवल हरिजन और नवबौद्ध नहीं। गाँव की सीमा से बाहर रहनेवाली सभी अछूत जातियाँ आदिवासी, भूमिहीन खेतिहार मज़दूर, कष्टकारी जनता और यायावर जातियाँ सभी की सभी दलित शब्द में व्याख्यायित होती है। दलित शब्द की व्याख्या में केवल अछूत जाति का उल्लेख करने से नहीं चलेगा। इसमें आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए लोगों का भी समावेश करना होगा।”<sup>२</sup> दलित लेखक श्री ओमप्रकाश वाल्मीकि के अनुसार- “दलित शब्द उस व्यक्ति के लिए प्रयुक्त होता है जो समाज-व्यवस्था के तहत सबसे निचली पायदान पर है। वर्णव्यवस्था ने जिसे अछूत या अन्त्यज की श्रेणी में रखा, उनका दलन हुआ, शोषण हुआ। इस समूह को ही संविधान अनुसूचित जातियाँ कहा गया है जो जन्मना अछूत है।”<sup>३</sup>

उपर्युक्त अर्थ एवं परिभाषा से यह निकलता है कि दलित शब्द दबाए गए, शोषित, पीड़ित, प्रताड़ित के अर्थों के साथ जब साहित्य से जुड़ता है तो विरोध और नकार की ओर संकेत करता है। इन सभी जातियों की गुलामी और दासता का स्वरूप सामाजिक आर्थिक और सांस्कृतिक ही हैं, दलित शब्द संघर्ष का है तो भी उसमें बन्धुत्व समानता, मानवता का भाव भी है। अंत में यह कहा जा सकता है कि कुछ लोग ‘दलित’ शब्द का संकुचित अर्थ में प्रयोग करते हैं तो और कुछ उसके व्यापक अर्थ में प्रयोग कर रहे हैं।

१ डॉ. सुनीता साखरे, *हिन्दी और मराठी, दलित साहित्य: एक मूल्यांकन*, पृ. १६।

२ शरणकुमार लिंबाले, *दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र*- पृ.३८

३ ओमप्रकाश वाल्मीकि, *दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र*- पृ.१४

## २.१.२ दलित साहित्य

जिस साहित्य में समाज के दलित-दमित एवं पीड़ित मानव का चित्रण होता है उसे दलित साहित्य कहा गया है। अस्पृश्यता, छुआछूत, अंधविश्वास, धार्मिक पाखंड, गुलामी, शोषण जैसे अत्याचारों के खिलाफ के साहित्य को भी दलित साहित्य माना गया है। जिस साहित्य को पढ़कर दलित अपनापन का अनुभव करता है, इसे भी दलित साहित्य कहा जा सकता है। यह अनुभवों पर आधारित है। दलितों के जीवन यथार्थ को उसकी पूरी वास्तविकता के साथ अभिव्यक्त करने का प्रयास विभिन्न भाषाओं में हो रहा है।

दलितों द्वारा दलितों के लिए लिखा गया साहित्य ही दलित साहित्य है। अगर किसी सवर्ण लेखक ने दलित जीवन भोगा है, उत्पीड़न का अहसास किया है, ब्राह्मणवादी व्यवस्थाओं के खिलाफ विद्रोह और दलितों की संवेदना जागृत करने के लिए चेतना है। उसमें समानता, स्वतंत्रता, बन्धुत्व, सम्मान, न्याय के लिए लिखता है तो उसका लेखन भी 'दलित साहित्य' के अन्तर्गत आता है। विद्वानों ने इसके स्वानुभूति और सहानुभूति के पक्ष को स्वीकार करते हुए दो भागों में विभक्त करने की कोशिश की है। जिसकी चर्चा विस्तार से हम आगे करेंगे।

दलित साहित्य वैज्ञानिक सत्य पर आधारित धर्म, कर्म, भाग्य, भगवान जन्म-मरण व पूर्वजन्म के सिद्धान्तों को नकारता है। यह धरती से जुड़े लोगों के भोगे गये जीवन से जुड़ा साहित्य है। समकालीन दलित साहित्य दलितों के सामाजिक एवं वैयक्तिक जागरण का इतिहास है। इसमें दलितों को अपने स्वत्व को पहचानने की शक्ति दी है। दलित लेखकों का अलग-अलग अनुभव, उनकी जनभाषा, उनकी प्रतिबद्धता, अम्बेडकरवादी विचार और इस साहित्य के विद्रोही समूहदर्शी स्वरूप के कारण दलित साहित्य की पृथकता स्पष्ट होती है।

भारत में दलित साहित्य का आरंभ मराठी में हुआ है। इस साहित्य के मूल में महात्मा फुले और बाबा अम्बेडकर के विचार और राजर्षि शाहू महाराज का कर्तव्य भी शामिल है। महाराष्ट्र ने भारतीय समाज को नयी सोच, नव-दर्शन और आधुनिक विचार दिए हैं। हिंदी भाषा को नया कथ्य, नई भंगिमा शैली और नये भावबोध महाराष्ट्र के मराठी साहित्यकारों की देन है। उनका मानना था, यदि अपनी अनुभूतियों को बृहत्तर आयाम देना है तो मराठी के अलावा हिन्दी को अपना अनिवार्य है।

### २.१.३ दलित साहित्य की परिभाषा

अनेक विद्वानों ने ‘दलित साहित्य’ की व्याख्या करते हुए उसे परिभाषित करने का प्रयास किया है। दलित चिन्तक कंवल भारती की धारणा है कि “दलित साहित्य से अभिप्राय उस साहित्य से है जिसमें दलितों ने स्वयं अपनी पीड़ा को रूपायित किया है अपने जीवन-संघर्ष में दलितों ने जिस यथार्थ को भोगा है, दलित साहित्य उनकी उसी अभिव्यक्ति का साहित्य है। यह कला के लिए कला नहीं, बल्कि जीवन का और जीवन की जिजिविषा का साहित्य है। इसलिए कहना होगा कि वास्तव में दलितों द्वारा लिखा गया साहित्य ही दलित साहित्य की कोटि में आता है।”<sup>१</sup> मोहनदास नैमिशराय के मतानुसार-“दलित साहित्य यानी बहुजन समाज में सभी मानवीय अधिकारों एवं मूल्यों की प्राप्ति के उद्देश्य से लिखा गया साहित्य है।”<sup>२</sup> मराठी भाषा के प्रतिष्ठित साहित्यकार शरणकुमार लिंगबाले दलित साहित्य के विषय में लिखते हैं- “दलित साहित्य भारतीय साहित्य में नई और विशिष्ट साहित्यिक धारा है। इस नई साहित्यिक धारा ने भारतीय साहित्य को नये अनुभव, नई अनुभूति, नए शब्द, नए नायक, नई दृष्टि और वेदना-विद्रोह का रसायन दिया है। इतना ही नहीं आत्मपरीक्षण, समालोचना का नया आयाम

१ कंवल भारती, युद्धरत आमआदमी, अंक ४१-४२, वर्ष, १९९८, पृ. ४१.

२ डॉ. धीरजभाई वणकर, दलित विमर्श- पृ.१० (से उद्धृत)

दिया है।”<sup>१</sup> डॉ. माताप्रसाद का मत है -“दलित साहित्य में जहाँ सामाजिक दर्द है, जातिवाद की पीड़ा है, शोषण तथा उत्पीड़न की कसक है, वहीं जाति उत्पीड़न तथा शोषण के कारणों की तलाश भी है। इसमें भाग्यवाद को अस्वीकार करने की भावना भी है। दलित साहित्य एक ऐसा साहित्य है जो सभी तरह की वर्ण-व्यवस्था, जाति-पाँति, ऊँच, नीच, भेदभाव के दायरे से ऊपर है, जिसे धर्म, भाषा और प्रदेश की सीमाओं में नहीं बाँधा जा सकता है।”<sup>२</sup> रामभरत पासी के शब्दों में दलित साहित्य - “एक संघर्ष है जड़ता के खिलाफ और उनके भी जो शोषण और मानवीय मूल्यों के हनन को अपनी नियति माने सदियों से स्पंदनीय है।”<sup>३</sup> डॉ. कालीचरण स्नेही ने लिखा है-“दलित साहित्य एक ऐसे वर्ग का साहित्य है जिसे अब तक वंचित, अस्पृश्य कहकर नकारा जाता है।”<sup>४</sup>

डॉ. धर्मवीर के अनुसार - “दलित साहित्य वही साहित्य है जिसे दलित लेखक लिखता है।”<sup>५</sup> डॉ. प्रेमशंकर के अनुसार, “दलित साहित्य दलितों का, दलितों द्वारा, दलितों की भाषा में लिखा गया जीवन्त साहित्य है जो अपने सच्चे अनुभवों से सोए हुए साहित्यों को जगाकर उसकी गरिमा, गौरव, अस्मिता, आत्माभिमान तथा अस्तित्व के प्रति विश्वास करने का साहित्य है”<sup>६</sup> श्री ओमप्रकाश वालमीकि की राय में “दलित साहित्य दलित जीवन की सही और यथार्थवादी अभिव्यक्ति है जो कल्पना पर आधारित नहीं, जीवन को उसके उसी रूप में प्रस्तुत करती है जिस रूप से वह मौजूद है”<sup>७</sup> डॉ.

१ शरणकुमार लिंबाले, *दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र*- पृ. ४५

२ डॉ. माताप्रसाद, *हिन्दी काव्य में दलित काव्य धारा*- पृ. १५४

३ रमणिका गुप्ता, *दलित चेतना: साहित्य एवं सामाजिक सरोकार*- पृ. १०८

४ डॉ. कालीचरण स्नेही, *हिन्दी साहित्य में दलित अस्मिता*, पृ. २३.

५ डॉ. धर्मवीर, *संचेतना*, जून, १९९९, लेख -पृ. ५७.

६ डॉ. प्रेमशंकर, *दलित संघर्ष: संस्कृति एवं साहित्य की सबल अभिव्यक्ति* (लेख) प्रशासन, त्रैमासिक, मसूरी, जनवरी-मार्च, १९९७, पृ. २१२-२१३.

७ आजकल- दिसंबर, २०००, पृ. ९९

दयानन्द बटोही के अनुसार “दलित साहित्य दलितों की चेतना को अभिव्यक्ति देता है। इसमें दलित मानवता का स्वर है। एक विद्रोह उस व्यवस्था के प्रति है, जो सदियों से दलितों का शोषण कर लाभ की स्थिति में है।”<sup>१</sup> डॉ. रणसुभे के शब्दों में, “प्रत्येक भाषा के साहित्य के अपने स्वप्न होते हैं। ये स्वप्न कालानुरूप बदलते भी जाते हैं। दलित साहित्य के स्वप्न भी बदलते-बदलते एक क्रम से जाति, वर्ण, धर्म, अर्थ, राजनीति के बंधनों से मनुष्य को मुक्त करता रहा है। यह प्रक्रिया मात्र दलित-साहित्य की ही नहीं कुल मनुष्य-जाति की अखण्ड यात्रा की प्रक्रिया है।”<sup>२</sup> यहाँ पर डॉ. रणसुभे जी ने मनुष्य को हर बंधन से मुक्त होने का सपना देखा है। वे चाहते हैं कि मनुष्य को उसके वर्ण, जाति तथा धर्म के कारण नकारा नहीं जाना चाहिए। इसी प्रकार के उद्देश्य के तहत दलित साहित्य लिखा जाता है। डॉ. रघुवीर सिंह ने कहा है-“यह वह साहित्य है जो लावा है, जो हज़ारों बरसों से सुषुप्त था, आज भयंकर लावा के रूप में व्यवस्था को तहस-नहस करने को उतारू है।”<sup>३</sup> दलित दलितों को उनके दलितपन का अहसास कराने में लगा हुआ है। इसके कारणों की खोज करते हुए दलित मुक्ति का मार्ग भी बता रहा है। दलित साहित्य के संदर्भ में अपनी राय व्यक्त करते हुए डॉ. एन सिंह का कहना है कि- “दलित साहित्य की शक्ति कला नहीं सत्य है। इसलिए दलितों द्वारा दलितों के लिए लिखा गया साहित्य को दलित साहित्य कहूँगा।”<sup>४</sup>

विमल थोरात का मानना है-“दलित साहित्य उस विद्रोह का उन्मेष है जो किसी विशिष्ट जाति या व्यक्ति के विरुद्ध नहीं बल्कि ‘स्व’ के खोज में निकले हुए एक पूरे

१ डॉ. दयानन्द बटोही, *साहित्य में दलित चेतना* (लेख)पश्यंती, त्रैमासिक अप्रैल, जून, १९९९, पृ. १२९.

२ मधुमती: अप्रैल-मई, २०१०, पृ.४५

३ डॉ.रघुवीर सिंह, डॉ. अंबेडकर और दलित चेतना, पृ. ७.

४ डॉ. एन. सिंह, मेरा दलित चिंतन, पृ. ३७.

समाज की पूर्व परम्पराओं से विद्रोह है एवं अपने अस्तित्व की स्थापना का प्रयास है।”<sup>१</sup> हिन्दी लेखक कमलेश्वर के शब्दों में-“ जातीय स्वाभिमान को छोड़कर इस साहित्य ने भारत के दलित और वंचित मनुष्य को सम्मान दिया है। यह साहित्य भारत की अपमानित और वंचित मनुष्यता की अस्मिता की आवाज़ है।”<sup>२</sup> कुल मिलाकर दलित साहित्य भविष्य का साहित्य है। राजेन्द्र यादव का यह कहना कि “अगली सदी दलित रचनाओं की होगी।”<sup>३</sup> डॉ. सी. बी. भारती की मान्यता है कि “दलित साहित्य नवयुग का एक व्यापक वैज्ञानिक व यथार्थपरक संवेदनशील साहित्यिक हस्तक्षेप है। जो कुछ भी तर्कसंगत, वैज्ञानिक, परंपराओं के पूर्वाग्रहों से मुक्त साहित्य सृजन है। उसे हम दलित साहित्य के नाम से संज्ञायित करते हैं।”<sup>४</sup>

Dalit literature is literature written by the dalits, that those who are oppressed by the Indian caste system. Dalit literature forms an important and distinct part of Indian literature. Dalit literature emerged in the 1960s, starting with the Marathi language, and soon appeared in Hindi, Kannada, Telugu, Bangla and Tamil language, through narratives such as poems, short stories and most autobiographies, which stood out due to their stark Portrayal of reality and the Dalit political science.<sup>५</sup>

दलित साहित्य की जितनी भी परिभाषाएँ हैं, उनका एकमात्र स्वर, सामाजिक परिवर्तन तथा अम्बेडकरवादी विचार ही है। इससे यह स्पष्ट है कि दलित साहित्य

१ विमल थोरात, मराठी दलित कविता और साठोत्तरी हिन्दी कविता में सामाजिक और राजनीतिक चेतना- पृ.२९

२ कमलेश्वर, तीसरा दलित साहित्य सम्मेलन, स्मरणिका, जनुवरी, १९७९

३ ओंप्रकाश वाल्मीकी, *दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र*- पृ. २१

४ डॉ. सी.बी. भारती, *दलित साहित्य का सौंदर्य शास्त्र*, (लेख) हंस, अंक २, १९९६, पृ. ७०-७१.

५ <https://en.wikipedia.org/wiki/dalitliterature>



पुरानी परंपराओं से मुक्त नवयुग का एक साहित्य सृजन है वह संवेदशील एवं जीवन यथार्थ का चित्रण करनेवाला है। दलित साहित्य का केन्द्र बिन्दु मनुष्य है। अर्थात् मनुष्य का उत्थान ही दलित साहित्य का प्रयोजन है। यह मानव मुक्ति के लिए लड़ने वाला सम्यक क्रान्ति का साहित्य है। यह मनुष्य को मनुष्य के रूप में देखना पसन्द करता है। यह मानव के जीवन मूल्यों एवं जीवनादर्शों को प्रतिष्ठित करता है और सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक एवं अज्ञान के मुक्ति पथ तक ले जाता है। दलित साहित्य 'सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयः' के लोकहित सर्वोदय की कामना करती है।

#### २.१.४ दलित साहित्य और गैर दलित साहित्य में अंतर

दलित लेखक कौन हो सकता है? इसके दो पक्ष हमारे सामने उपलब्ध हैं। कुछ लोग मानते हैं कि दलित ही दलित लेखन कर सकता है। क्योंकि वह खुद अत्याचारों और शोषणों का शिकार बन चुका है। दूसरे पक्षवाले यही मानते हैं कि दलितों से सहानुभूति रखनेवाले लोग भी दलितों के लिए लिख सकते हैं। लेकिन तब यह प्रश्न उठता है कि 'स्व-अनुभूति' और 'सह-अनुभूति' में फर्क है या नहीं। दलित साहित्य में नकार एवं विद्रोह का स्वर अधिक मुखरित हुआ है। यह पुरानी काव्य-शास्त्रीय संकल्पनाओं को नकारता है। सत्यम्, शिव्, सुन्दरम् जैसी उक्ति को अस्वीकार करता है (यह पुराने मिथकों तथा परंपराओं को नकार कर नये मूल्यों की स्थापना के लिए प्रयत्नरत है।) इस कारण से दलित-गैर दलित रचनाकारों के बीच तर्क-वितर्क भी हो रहे हैं। असल में दलित साहित्यकार स्वयं भोगी हुई पीड़ा को लिखता है, उसका साहित्य 'स्वानुभूति' का साहित्य है, गैर-दलित साहित्यकार किसी की पीड़ा को देखकर उसका अनुभव करके रचना करते हैं, उनका साहित्य 'सहानुभूति' का साहित्य कहा जा सकता है। संक्षेप में दलित और गैर-दलित साहित्य का अन्तर वैसा ही है जैसा काँटा गड़े व्यक्ति का दर्द और काँटा गड़े के दर्द को अनुभव करनेवाले व्यक्ति का दर्द। दलित साहित्य

दलित की पीड़ा के साथ ही उसके विरोध, प्रतिरोध और उसके निवारण के लिए संघर्ष को प्रेरित करता है। गैर दलित साहित्यकार पीड़ित को संघर्ष के लिए प्रेरित नहीं करता, अपितु वह दोनों वर्गों के संघर्ष को बचाता है और समझौतावादी रूख अपनाता है दलित साहित्य जीवन की वास्तविकता का दस्तावेज़ है उसमें उस वर्ग के युग युगों की पीड़ा का क्रन्दन है, आँसू है। जयप्रकाश कर्दम ने लिखा है, “दलित लेखकों द्वारा लिखित दलित चेतनोन्मुख साहित्य ही दलित साहित्य है। गैर-दलित इस परिधि में नहीं आ सकता। हाँ, दलित शब्द की व्याप्ति को अवश्य मैं अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति के अलावा अन्य पिछड़े वर्ग के अन्तर्गत आने वाली कामगार जातियों तक करना चाहूँगा। क्यों कि बेशक हिंदू समाज व्यवस्था के अन्तर्गत वे सवर्ण हैं, किन्तु समाज में उनकी कोई सम्मानजनक स्थिति नहीं है।”<sup>१</sup>

गैर दलित रमणिका गुप्ता लिखती है, “मेरी राय में दलित ही दलित साहित्य लिख सकता है, क्योंकि उसने यथार्थ को भोगा है। गैर-दलित केवल संवेदना को लिख सकता है। उसका आधार सहानुभूति होती है। लेकिन दलित द्वारा कुछ भी लिखा हुआ दलित साहित्य नहीं कहलाता। क्योंकि दलित साहित्य डॉ. बाबा अम्बेडकर के नकार एवं स्वीकार पर आधारित है। २२ प्रतिज्ञाओं के दायरे में लिखा जाता है। दोनों की दृष्टि, पीड़ा, आक्रोश, आलंबनों में अंतर है।”<sup>२</sup> वास्तव में गैर-दलित साहित्यकारों द्वारा दलितों के विषय में लिखा गया दलित साहित्य दलित विमर्श है। दलित लेखकों द्वारा लिखा गया साहित्य उनकी चेतना है उनका स्वयं का भोगा हुआ यथार्थ है, अनुभूति है। दलित साहित्य ने उन बहिष्कृत लोगों को अपना नायक बनाया है, जिन्हें संपूर्ण वर्ण व्यवस्था ने अमंगल और अपवित्र माना, पूर्वजन्म का अपराधी कहकर जिनकी निंदा की

---

१ मधुमती: अप्रैल-मई, २०१०, पृ. ४३

२ वहीं

गयी है। गैर-दलित रचनाकारों ने दलित जीवन के नकारात्मक पक्ष को अधिक प्रस्तुत किए हैं। लेकिन दलित रचनाकारों द्वारा रचित रचनाओं में सवर्णों के अत्याचार के विरुद्ध दलित चेतना से मुखरित सकारात्मक पक्ष देख सकते हैं। वरिष्ठ मराठी दलित चिंतक गंगाधर पान्तावणे जो साहित्य के तीन स्रोत मानते हैं- “१. स्वयं जानक, भोगकर प्राप्त किया गया अनुभव २. दूसरे को देखकर, समझकर समवेदना के ज़रिए प्राप्त ज्ञान, अप्रत्यक्ष अनुभव तथा ३. कल्पना, कल्पना का तो सच से कोई सीधा रिश्ता नहीं होता। बाकी दो को पानतावणे जी ‘जाणीव’ तथा ‘सहजाणीव’ कहते हैं। जाणीव से ही दलित साहित्य रचा जा सकता है। लेकिन सहजाणीव (समवेदना) का साहित्य झूठा नहीं होता। वह भी सच है लेकिन अनुभव के ताप से रहित। प्रेमचंद और ओमप्रकाश वाल्मीकि का यही फर्क समझना चाहिए”।<sup>१</sup>

दलित साहित्य वास्तव में जन साहित्य है, साथ में लिटरेचर ऑफ एक्शन भी है जो मानवीय मूल्यों की भूमिका पर सामन्ती मानसिकता के विरुद्ध आक्रोशजनित संघर्ष है। इसी संघर्ष और विद्रोह से उपजा है दलित साहित्य। दलित जीवन और उनकी समस्याओं पर गैर-दलितों जैसे प्रेमचन्द, नागार्जुन, अमृतलाल नागर, गिरिराज किशोर जगदीश चन्द्र आदि ने लिखा है और दलित लेखन ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नैमिशराय, श्यौराज सिंह बेचैन आदि ने भी लिखा है। किन्तु इनकी अन्तर्वस्तु में इनके द्वारा अर्जित और प्रतिष्ठित मूल्यों में और उस अनुभव की प्रक्रिया की व्याख्या में गहरी फर्क है। डॉ. मैनेजर पाण्डेय ने भी अपने एक साक्षात्कार ‘केवल राख ही जानती है जलने का अनुभव’ में कहा है-“सच्चा दलित साहित्य वही होगा जो दलितों के बारे में दलित लिखेगे। अपने समुदाय के जीवन के यथार्थ और अनुभवों के बारे में कोई दलित लिखता है, तो उसकी दृष्टि में जो आग, चित्रों में जो आभा और भाषा में जो ऊर्जा होती

१ गंगाधर पानतावणे से बजरंग बिहारी की बातचीत, कथोदश - जुलाई २००८ ।

है, वह गैर दलितों के द्वारा दलितों के द्वारा दलितों के बारे में लिखे गए साहित्य में नहीं होती।”<sup>१</sup> दलित साहित्य की विशेषताओं पर यदि हम विचार करें तो पाते हैं कि दलित साहित्य समता, स्वतंत्रता और बंधुता का पक्षधर है।

## २.२. दलित कविता की भावभूमि

वैसे किसी भी चीज़ का आरंभ शून्य से संभव नहीं है, अर्थात् उसके पीछे एक परंपरा रहती है। अतः निरन्तरता और परंपरा का महत्व रहता है। आधुनिक दलित कविता के संदर्भ में भी दलित कविता की परंपरा को ढूँढना या समझना हमारा दायित्व बनता है। गीतात्मकता, ताल-लयात्मकता आदि किसी भी साहित्यभिव्यक्ति परंपरा के मूल में रहते हैं। इसके संबन्ध में डॉ. ए. अच्युतन जी का मत है कि “लोकाभिव्यक्ति का आत्मस्वरूप ताल-लय समन्य में है।”<sup>२</sup> मनुष्य के अभिव्यक्ति प्रक्रिया में भाव का महत्व है। इसी भावभूमी के कारण कविता या गीत का महत्व है। जब आचार्यों ने लोकधर्मी पद्धति की व्याख्या की है तब भी नैसर्गिक भावों की ओर इशारा किया है।

“स्वभाव भोवोपगतं शुद्धम् त्वविकृतं तथा  
लोकवार्ता क्रियोपेतमङ्गलीलाविर्वर्जितम् (६२)  
स्वभावभिनयोपतं नानास्त्रीपुरुषाश्रयम्  
यही दृशं भर्वेनाट्यम् लोकधर्मी तु सा स्मृतः”<sup>३</sup> (६३)

अर्थात्: शुद्ध रूप से लोक व्यवहार तथा लोक में प्रचलित क्रियाओं की आंगिक लीलाओं के बिना ऊबहु मंच पर प्रस्तुत किया जाय तो नाट्य की यह पद्धति लोकधर्मी

१ जयप्रकाश कर्दम (सं), दलित साहित्य वार्षिकी (२००९-२०१०) अकादमिक. प्रतिमा, दिल्ली, पृ.१७

२ डॉ. ए. अच्युतन, लोकनाट्य एवं संस्कृति, पृ. ३५

३ भरतमुनि, नाट्यशास्त्र, Abhinav guptacharya, Natyasastra of Bharathmuni- Vol. II, p. 477.

हैं। इसलिए गीत का अध्ययन दलित कविता के संदर्भ में भी विशेष रूप से महत्वपूर्ण है। हर भाषा में ऐसे बहुत सारे गीत (पाट्टु) मिलते हैं, जिसमें दलित समाज के विविध आयामी स्वरूप देखने को मिलता है। आगे हमारी परंपरा में लोकगीत या दलित गीत के विशेषताओं पर चर्चा करेंगे ताकि दलित कविता के भावभूमि को स्पष्ट करने में सहायक सिद्ध होंगे।

### २.२.१ लोकगीत और दलित गीत

भावनाओं से ही लोकगीतों का जन्म हुआ है। मानव अपने जीवन में प्रकृति से जो कुछ देखा, सुना एवं अनुभव किया इससे जिस प्रकार की भावना उठी उसे अपनी भाषा के गीतों में सँजोकर रख दिया; लोकगीत के नाम से जाने पहचानने लगा। लोकगीत जन-जन के गीत है, जिन्हें मानव विभिन्न अवसरों पर तन्मयता के साथ गाता है। लोकगीत ही लोक भावनाओं के साकार स्वरूप हैं। इसकी मूल प्रेरणा मानव की अभिव्यक्ति है। इस अभिव्यक्ति प्रक्रिया में भाव का महत्व है। मानव की उपलब्धियों में गीत का महत्वपूर्ण स्थान है। गीत के रूप में ही आदिम मानव ने वाणी का प्रथम दर्शन किया था। मानव के आवेगों ताल-लय से संयुक्त होते हैं। ये ही गीत के रूप में प्रस्फुरित हो जाते हैं। इसमें शब्दों द्वारा भावों की अभिव्यक्ति होती है। अनेक विद्वानों ने गीत को परिभाषित करने का प्रयास किया है। महादेवी वर्मा ने लिखा है- “सुख- दुःख की भावावेशमयी अवस्था का विशेषकर गिने-चुने शब्दों में स्वरसाधना के उपयुक्त चित्रण करना ही गीत है”<sup>१</sup>। “गीत हमारे संस्कृति के वाहन हैं। सांस्कृतिक दरोहर को सहज सोखनेवाली आर्द्रा धरती माँ है, जो संस्कृति शिशु को पुष्ट, सुन्दर युवक बनाकर उसे चिर आयु प्रदान करती है। ज़रा-मरण के बन्धन से मुक्त कर उसे चिरन्तनता का अक्षर

---

१ महादेवी वर्मा, विवेचनात्मक गद्य, पृ. ९४१.

अशीष देती है।”<sup>१</sup> स्पष्ट है कि गीत -संगीत जीवन को गति प्रदान करती है। डॉ. गणेश खरे के अनुसार “गीत के वैदिक और लौकिक दो भेद किये गये हैं। वैदिक गीतों के अन्तर्गत सामगीत आते हैं और लौकिक गीतों के अन्तर्गत मार्ग गीत व देश गीत आते हैं।”<sup>२</sup> इसी देशी और मार्गी गीतों में देशी का स्वर ही परंपरागत दलित गीत के साथ जुड़े हुए हैं।

उपर्युक्त परिभाषाओं से स्पष्ट हैं कि जब मानव स्वानुभूति से प्रेरित होकर दुःख तथा सुख संवेदना से आन्दोलित हुआ होगा तभी गीत उनके अधरों से निकले होंगे। मानव चाहे सभ्य हो या असभ्य अपनी स्वानुभूति को अभिव्यक्त करने की इच्छा और क्षमता अवश्य रहती है। इसी प्रकार जब समस्त जन-समाज में चेतन-अचेतन रूप में जो भावनाएं गीतबद्ध होकर अभिव्यक्ति होती है, उन्हें लोकगीत कहते हैं। लोकगीतों में व्यक्तित्व से पृथक समान रूप में समाज की आत्मा को व्यक्त होते हुए देखा जा सकता है। इसकी अभिव्यक्ति सामूहिक होती है। लोकगीतों के माध्यम से मानव के आदिम रूप से लेकर उसके विकास, परिवर्तन और प्रयत्नों को समझ सकते हैं। इनमें गंभीर मानवीय मूल्य और मान छिपे रहते हैं। लोकगीत समूह के आवश्यकताओं को व्यक्त करते हैं। लोकगीतों में मूल मानव की संस्कृति का स्वर हैं। साथ ही वे युग-युग से बदलती बोलियों को भी व्यक्त करते हैं। लाला लजपतराय का कथन है कि “देश का सच्चा इतिहास और उसका नैतिक और सामाजिक आदर्श इन गीतों से ऐसा सुरक्षित है कि इनका नाश हमारे लिए दुर्भाग्य की बात होगी”<sup>३</sup> लोक संस्कृति के रूप सिर्फ परम्परागत नाच, गीत, चित्रकारी, रंगे, चेहरे, किस्से-कहावतें और पर्व-त्यौहार ही नहीं है, उसके

---

१ डॉ. सुरेश गौतम, *भारतीय लोकगीत सांस्कृतिक अस्मिता*, Vol. (2) पृ. ८.

२ डॉ. गणेश खरे, *आधुनिक प्रगीत काव्य*, पृ. २८.

३ डॉ. कुलदीप, *लोकगीतों का विकासात्मक अध्ययन*, पृ. ४९ (से उद्धृत)

भीतर से हमारे देश के लोक ने अपनी एक अनन्त जीवन शैली भी विकसित की है, कई मानवीय गुण भी अर्जित किए हैं।

लोक संस्कृति सिर्फ पिछड़े समुदायों की संस्कृति है ये धारणा औरियन्टलिसम की देन है। ये संपूर्ण मानव के संस्कृति है। गीत, संस्कार या संस्कृति एक घने वृक्ष की तरह है। उसकी शाखाओं उपशाखाओं से छाया और रस लेकर मनुष्य मनुष्यत्व का प्रसार करता है। उल्लेखनीय है कि मनुष्य-मनुष्य के प्रेरक शक्तियों को नियोजित कर संस्कृति, समाज, राष्ट्र को एक निश्चित दिशा की ओर निरन्तर अग्रसर करती रहती है। समयानुकूल परिवर्तन- परिवर्धन में ही संस्कृति का पुनः सृजन है। संस्कृति पुनः सृजन की यह यात्रा मनुष्य चेतना के साथ-साथ चलती रहती है और इस यात्रा में गीत, लोकगीत, कविता तथा संपूर्ण कला और साहित्य का महत्व है। भारतीय लोकगीतों के प्रारम्भ के विषय में कुछ निश्चित रूप से कहा नहीं जा सकता। किन्तु अनुमान से विदित होता है कि मानव समाज में संगठित होते रहने से लोकगीत का उदय हुआ। संपूर्ण संसार में मानव के आविर्भाव से लोकगीतों का उद्भव माना जाता है। अर्थात् लोकगीतों के जन्म की कोई निर्धारित काल-रेखा नहीं है। लोकगीतों की अनन्त प्रवाहमयी परम्परा की प्राचीनता के सम्बन्ध में रामनरेश त्रिपाठी ने लिखा है- “जब से पृथ्वी पर मनुष्य है, तब से गीत भी है। जब तक मनुष्य रहेंगे, तब तक गीत भी रहेंगे। मनुष्यों की तरह गीतों का भी जीवन-मरण साथ चलता रहता है। कितने ही गीत तो सदा के लिये मुक्त हो गये। कितने ही गीतों ने देश काल के अनुसार भाषा का चोला तो बदल डाला, पर अपने असली स्वरूप को कायम रखा। बहुत से गीतों की आयु हज़ारों वर्ष की होगी। वे थोड़े परिवर्तन के साथ समाज में अपना अस्तित्व बनाये हुए हैं।”<sup>१</sup> मानव प्रकृति से ही सब कुछ सीखा है। हमारी संस्कृति की सत्यमुखी दृष्टि प्रकृति से ही मिला है। ‘सत्यात् नास्ति

---

१ विद्या चौहान, लोकगीतों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, पृ.५४

परो धर्मः' यह तत्व दर्शी ऋषियों की वाणी का प्रसार है। अर्थात् सत्य से श्रेष्ठ अथवा सत्य से अलग कोई धर्म नहीं, अतः कहना चाहिए कि सत्य ऋषियों की वाणी का प्रसार है। सत्य ऋषि मानस का सर्वोपरि सांस्कृतिक मूल्य है।

लोकगीत लोक मानस की अभिव्यक्ति है। लोक मानस में गाँव के अनपढ़, गरीब, दलित पिछड़े लोग और स्त्रियाँ ही अधिक संख्या में हैं। इसलिए लोक गीतों में इन्हीं की भावनाओं के स्वर मुखरित होते हैं। लोकगीतों में जहाँ मंगलगायक और सुख दायक स्वर होती है, वहाँ दुःख दर्द एवं पीड़ा की पुकार भी है। लोकगीतों के माध्यम से पारिवारिक संबंधों की व्याख्या, संस्कारों का महत्व आदि का उल्लेख देखने को मिलते हैं- उदा: फाग-मस्ती और मिल का त्योहार के आगमन का वर्णन किया है-

“जब आयी होली रंग भरी/सो नाजो अदा से मटक-मटक  
और धुँघट के पट खोल दिये/वह रूप दिखाया चमक चमक”<sup>१</sup>

सुबह को स्त्रियाँ चकिया पीसते समय गाते गीतों की भावभूमि उनके श्रम को कम कराती है -

“अरे कछु जानत है कछु नाय/सवेरे राजा अकलि बताये जईऔ  
सहीआ साँझ मैंने मटर बबाई”<sup>२</sup>

लोकगीतों में गहनों, खाद्य-वस्तुओं, मिठाइयों, नगरों, देवी-देवताओं और वैवाहिक उत्सवों पर गाए जाने वाले गीतों में रिश्ते के नाम जोड़-जोड़कर इन गीतों को जितना चाहें लबा किया जा सकता है-

---

१ डॉ. सुरेश गौतम, भारतीय लोकगीत सांस्कृतिक अस्मिता, पृ. ५६.

२ डॉ. महेश गुप्त, लोक साहित्य का शास्त्रीय अनुशीलन, पृ. १४७.



“बन्ना तो मेरा चाँद-सा पर बन्नी काली है  
बन्ने के बाबा यूं कहे मैं नाही ब्याहूँगा  
पर दादी रानी यूं कहें मेरी देखी भाली है.....”<sup>१</sup>

लोकगीतों के माध्यम से ब्रिटीश सत्ता पर व्यंग्य बाण चलाना जन-चेतना के आक्रोश की वाणी थी, उन्हें जब भी अवसर मिला तो गीतात्मक शैली में वह अपनी घृणा व्यक्त करता है -

“चढि घोडे पै धांगि दियौ/धांगि दियौ भाई धांगि दियौ  
दिल्ली जाए पुकारी है/ दिल्ली की है ऊँची कोट  
मार रे भैया पहली चोट/ चोट गई चुलहा की ओर  
फिरंगी बैठो कुंड में/ वै सारे के मुंड में”<sup>२</sup>

लोक प्रकृति के संरक्षक है, वे प्रकृति में लीन होकर प्रकृति से प्रेरणा प्राप्त करते हैं। प्रकृति को संबोधित करते हुए वे गाते हैं-

“जंगल को बासी रे पिरेत/जंगल को बासी रे पिरेत मेरे जंगलिया  
तो है घाम लगैगी रे पिरेत मेरे जंगलिया  
तौंकू पेड़ लगाय दऊ रे पिरेत मेरे जंगलिया”<sup>३</sup>

सवणों के घर खटहल लेने गए दलित को पेड़ के सबसे ऊपर के खटहल दे देते हैं, तो इसी प्रकार के गीतों का जन्म होता है-

---

१ डॉ. सुरेश गौतम, लोक साहित्य अर्थ और व्यक्ति, पृ. ८३.

२ वही, पृ. ७२.

३ कुलदीप, लोकगीतों का विकासात्मक अध्ययन, पृ. ३५.

“पेड़ के नीचे खटहल तो बहुत है  
सबसे ऊपर वाले खटहल के लिए गया  
तो खटहल और बच्चा दोनों ऊपर से नीचे/गिर पड़ा”<sup>१</sup>

यह गीत सवर्णों के अधिकार और वर्चस्ववादी नीति की ओर संकेत देते हैं। खेत में ककड़ी देखकर बच्चा उसे खा जाता है इसी के नाम अपने बच्चे को चोर कहने वाला सवर्ण व्यवहार दलित सह नहीं सकता। बच्चे के लिए यह चोरी नहीं तो पुलय कहता है-

“बिना ज्ञान से ले लिया बिट्टू  
आरोप चोरी का न लगाना/ प्रायश्चित्त मैं करूँगा।<sup>२</sup>

यहाँ ककड़ी एक प्रतीक मात्र है। बारिश नहीं तो आरोप दलितों पर, ठीक तरह से फसल नहीं तो आरोप दलितों पर पीढ़ियों से यह हालत जारी है। यहाँ सबसे नीचे का खटहल सारी सुविधाओं के जीवन का प्रतीक है और सबसे ऊपर वाला कष्टतापूर्ण जीवन का ।

वस्तुतः लोकगीतों के प्रभाव को मध्ययुगीन हिन्दी रचनाओं में व्यापक रूप से ढूँढा जा सकता है। संदेश-रासक, बीसलदेव रासो, ढोलामारूरा दूहा, आल्हा (परमाल रासो) आदि रचनाएँ तत्कालीन लोक-गीतों एवं कथा गीतों का विकसित एवं साहित्यिक रूप है। लिपिबद्ध साहित्य एवं काव्य कला का अस्तित्व तो कागज़ एवं पुस्तकों में सिमट कर वर्ग विशेष एवं युगविशेष तक ही सीमित रहा है, किन्तु लोकगीतों का अस्तित्व उसकी अन्तः शक्ति के कारण जन-मानस पर अविच्छिन्न रूप से छाया ही रहता है।

---

१ डॉ. वि. लिसी मात्सू, *पोट्टन तैय्यम*, पृ. ६८.

२ वही

लोकगीतों के विश्लेषण से पता चलता है कि लोकगीत और परंपरागत दलित गीतों को अलग दृष्टि से देखना उचित लगता है। दलित गीत की अलग पहचान अलग संस्कृति और अलग अस्तित्व होती है। इन दलित मौखिक गीतों के माध्यम से ही दलित समूह की समस्याएँ, दुःख, पीड़ा, स्वानुभूति संघर्ष और विद्रोह आदि अभिव्यक्ति पा रहे हैं। आधुनिक युग में दलितों की पीड़ा की अभिव्यक्ति दलित कविता के माध्यम से अभिव्यक्त हो रहा है तो हमें यही समझना चाहिए कि दलित कविता का मूलस्वरूप या स्रोत परंपरागत दलित गीतों में पाया जाता है। ग्रामीण क्षेत्र के अनुसूचित जन-जातियों, अनुसूचित जातियों, पिछड़े और महिलाओं में यह गीत अधिक प्रचलित हैं। दलित गीत की छोटी-छोटी कड़ियाँ इतिहास को सही ढंग से समझने में सहायता करती है। यह दलित गीत दलित समाज की संस्कृति की थाती है। इस प्रकार दलित वर्ग अपने भाव को अकेलेपन में गीतों के माध्यम से प्रकट करते रहे हैं। परंपरागत दलित गीतों के संबन्ध में प्रो. डॉ. ए. अच्युतन जी का मत उल्लेखनीय है - “यह गीत प्रचलित लोकगीतों से भिन्न हैं। परंपरागत दलित गीत, नृत्य-नृत्यों का अपना एक संस्कार हैं, एक व्याकरण है, अभिव्यक्ति शैली है। इन गीतों के सही विश्लेषण से तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था में दलितों की स्थिति, जीवन रीतियाँ मोह और मोहभंग कल्पना शक्ति, भाषा, साहित्य, कला और संस्कृति संबंधि विवरण प्रमाण के साथ सामने आ जाएँगे। अतः ऐतिहासिक और सृजनात्मक दृष्टि से इन दलित गीतों के अध्ययन अनुसंधान की सख्त ज़रूरत है। अपनी सांस्कृतिक अभिव्यक्ति दलितों का जन्मसिद्ध अधिकार है। यह संस्कृति मलटी-कल्चरल (बहु-सांस्कृतिक) है, और इस संस्कृति का अन्य समान सांस्कृतिक इकाइयों से भी संबंध है। (इंटर और क्रॉस कल्चरल, अंतर एवं प्रति सांस्कृतिक) आंतरिक और बाहरी कारणों से अपनी भूमि से कट और संस्कार से दूर हटाये आस्ट्रेलिया के अबोर्जिनल, मूल निवासी, स्कान्डिनेविया के सामी, न्यूजिलैंड के मवोरी, अमेरिका के अमेरिन्डिन आदि आदिम जनसमूह की ओर भारत की दलितों की,

अवस्थाओं में अधिक अंतर नहीं है। अतः इनके साहित्य का अध्ययन इतिहास और गोत्र संस्कार का अध्ययन-अनुसंधान सबसे महत्वपूर्ण कार्य बन जाता है<sup>१</sup> उपर्युक्त कथन से व्यक्त होता है कि परंपरागत दलित गीत का अपना अलग पहचान अस्तित्व एवं महत्व है। विशेषकर समाजशास्त्रीय अध्ययन की दृष्टि से इन परंपरागत दलित गीतों का अलग से अध्ययन करना चाहिए।

भारतीय सामाजिक व्यवस्था में दलितों को पठन-पाठन का अधिकार नहीं था इसलिए मेहनतकश दलित समुदाय प्रकृति से ज्ञानार्जन करके अपनी कथनी के माध्यम से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित कर देता था और इसी कारण उनमें मौखिक ज्ञान की परम्परा प्रबल होती गयी। शिक्षित न होने के कारण दलित समुदाय अपनी असंख्य रचनाओं को लिपिबद्ध नहीं कर पाया और वे उनकी मृत्यु के साथ ही विलुप्त हो गयी। अतः आज, दलितों द्वारा लिखे गये इतिहास एवं साहित्य में भारतीय सामाजिक व्यवस्था की ओर संकेत है जिसने उन्हें अपने अधिकार से वंचित रखा है।

### २.२.१.१ लोक : अर्थ एवं परिभाषा

लोक मनुष्य समाज का वह वर्ग है जो परंपरा के प्रवाह में जीवित रहता है। समाज और व्यक्ति के इतिहास को सजीवता प्रदान करने की क्षमता लोक में है। लोक के माध्यम से समाज के अतीत, राग- विराग, संस्कृति, सुख -दुःख, उपासना, व्रत, पूजा, दान, यज्ञ आदि समाज के नैतिक एवं धार्मिक पक्षों की जानकारी मिलती है। राष्ट्र एवं संस्कृति को अर्थवत्ता प्रदान करने में लोक का महत्व है। अतः मानव के ऐतिहासिक, भौगोलिक वातावरण के अनुसार मानव में बदलाव आ जाती है। भारतीय मनीषी वैदिक युग से लेकर या उसके पहले से वर्तमान युग तक लोक और लोक आकांक्षाओं को

---

१ संकल्प त्रैमासिक पत्रिका, अप्रैल- जून २०११ हिन्दी अकादमी, हैदराबाद, पृ. ६३.

अपने साहित्य कलाओं में चित्रित करने का प्रयास किया है। संक्षेप में कह सकते हैं कि लोक का अपना महत्व है और भारतीय साहित्य इसी लोक सत्ता के अनुप्राणित है।

शब्द कोश के अनुसार लोक शब्द के कई अर्थ हैं- 'स्थान विशेष' जिसका बोध प्राणी से हो, संसार, प्रदेश, जन या लोग, समाज, प्राणी, यश आदि। परन्तु लोक के दो अर्थ विशेष रूप से प्रचलित हैं। एक तो स्थान विशेष के रूप में- जैसे उपनिषदों में दो लोक माने गए हैं- 'इहलोक और परलोक' दूसरा अर्थ लोक जनसामान्य है। इसी का हिन्दी रूप 'लोग' बन गया है। इसी अर्थ को प्रकाशित करने वाला 'लोक' शब्द साहित्य का विशेषण बन गया। सिद्धान्त कौमुदी के अनुसार 'लोक' शब्द की व्युत्पत्ति इस प्रकार संभव है- 'लोक' शब्द संस्कृत के 'लोक दर्शन' धातु से बना है। इसमें 'धज' प्रत्यय लगने से ही 'लोक' शब्द निष्पन्न हुआ है। इस धातु का अर्थ है देखना। इसका लट् लकार में अन्य पुरुष एक वचन का रूप 'लोकते' है। अतः लोक शब्द का मूल अर्थ हुआ 'देखने वाला'। वह समस्त जन समुदाय जो इस कार्य को करता है, लोक कहलाएगा।<sup>१</sup> वास्तव में 'लोक' शब्द अत्यन्त प्राचीन है। परन्तु आधुनिक युग में अध्ययन की नई दिशाओं के कारण लोक शब्द साहित्य में एक नए महत्वपूर्ण विशेषण के रूप में प्रतिष्ठित हो गया है।

ऋग्वेद में 'लोक' शब्द का व्यवहार जीव तथा स्थान दोनों अर्थों में किया गया है। वेदों में 'लोक' दो प्रकार के माने हैं- पार्थिव और दिव्य।<sup>२</sup> भारत में आर्य जाति के आगमन पर यहाँ के मूल निवासियों से उनका जो संघर्ष हुआ उसके फलस्वरूप वेद और

---

१ सं. रामचन्द्र वर्मा, *संक्षिप्त हिन्दी शब्द सागर*, पृ. ९७७

२ प्र.सं. महापंडित राहुल सांकृत्यान, *हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, भाग-१६*, पृ. १

३ ऋग्वेद, १०/१४/९ चौखम्बा, वाराणसी

वेदेतर स्थिति आयी। ‘लोक’ को अब वेदेतर (वेद-विरोधी) माना जाने लगा किन्तु कालान्तर में ‘लोक’ अपनी संकुचित स्थिति से निकल आया और उसकी भावना वैदिक तथा अवैदिक दोनों का स्पर्श करने लगी। अब तो ‘लोक’ परम्परा का संरक्षक, सहेजने वाला और अनुभूति की संवेदना-पूर्ण सतत संवाहक माना जाने लगा। पाणिनी की अष्टाध्याय में ‘लोक’ तथा ‘सर्वलोक’ शब्दों का प्रयोग ‘लौकिक’ तथा ‘सार्वलौक’ शब्दों की निष्पत्ति के सम्बन्ध में हुआ है।<sup>१</sup> पाणिनी ने भी वेद से पृथक् ‘लोक’ की सत्ता सत्ता को मान्यता दी है। इसी प्रकार वररुचि के वार्तिकों में तथा पतंजलि के महाभाष्य में भी ‘लोक’ शब्द का प्रयोग विभिन्न अर्थों में हुआ है।<sup>२</sup> गीत में लोक-शास्त्र तथा लौकिक आचारों की महत्ता स्वीकार की गयी है। बौद्ध धर्म में ‘लोक’ को प्रमुखता दी गयी है। अशोक के शिला-लेखों में ‘लोक’ के कल्याण के आदेश हैं।<sup>३</sup> प्राकृत और अपभ्रंश में प्रयुक्त ‘लोकजना’ और ‘लोकप्पवाय’ आदि शब्द लौकिक नियमों का महत्त्व प्रकट करते हैं। यजुर्वेद में लोक (समाज) की एक विराट कल्पना मिलती है। वास्तव में साधारण जन-समाज ही ‘लोक’ कहलाता है। जिस लोक-साहित्य को कुछ समय तक अनपढ़, गँवारू, निम्न स्तरीय और अनुपयोगी समझा जाता था वह अब नये दृष्टिकोण को प्रस्तुत करने वाला माना जाने लगा है।

हिन्दी का ‘लोक’ शब्द ऐंग्लो-सेक्सन शब्द ‘फॉक’ जैसा ही है। ‘फॉक’ (Folk) शब्द की उत्पत्ति Folc से हुई है। जर्मन में इसे Volk लिखा जाता है<sup>४</sup>। अंग्रेज़ी में इस

१ लोकसर्वलोकाट्ठस तत्रविदितःइत्यर्थे लौकिकः

अनुषत्तिकादित्वदुभयपवृद्धि सर्वलौकिकः - पाणिनी अष्टाध्यायी।

२ प्रो. ए. अच्युतन, लोक नाट्य एवं संस्कृति, पृ. २१

३ वही, पृ. २१

४ वही, पृ. २२

‘फॉक’ का प्रयोग अनपढ़, असंस्कृति और मूढ़ समाज के लिए ही होता रहा है। किन्तु अब इसका प्रयोग सर्वसाधारण और राष्ट्र की सभी लोगों के लिए भी होने लगा है। ‘फॉक’ शब्द ‘लोक’ का पर्यायवाची कहा जा सकता है। ‘जन’ या ‘ग्राम’ ‘फॉक’ के अर्थ में आते हैं, किन्तु वास्तव में ‘फॉक’ इनसे भिन्न है। ‘जन’ प्राचीन शब्द है जिसका अर्थ ‘मानव-समाज’ है। इस आधार पर ‘फॉक’ और जन एक ही अर्थ लिये हैं। किन्तु प्रयोग और परम्परा के आधार पर ‘फॉक’ के साथ ‘लोक’ के ही समानता अधिक दिखायी देती है। वैसे देखा जाये तो ‘लोक’, ‘फॉक’ से अधिक विशाल स्तर को स्पर्श करने वाला है। वह ‘फॉक’ से अधिक प्राचीन भी है।

ऊपर बताए हुए विचारों के आधार पर लोक शब्द का अर्थ साधारण जन, स्थान, जगत, जन, जीव, संसार आदि है। ‘निरुक्त में तीन लोकों का उल्लेख है- पृथ्वी, अन्तरिक्ष, और द्विलोक पौराणिक काल में सात लोकों की कल्पना हुई भूलोक, भूवलोक, स्वलोक, महालोक, जनलोक, तपलोक और सत्यलोक या ब्रह्मलोक। फिर पीछे इनके सात-सात पाताल-अतल, नितल, वितल, गमस्तिमान, तल, सुतल और पाताल मिलाकर चौदह लोक किए गए”<sup>१</sup> ‘लोक’ का दूसरा अर्थ जनसाधारण है। ‘लोक’ शब्द पर विचार करते हुए डॉ. वासुदेव शरण अग्रवाल ने लिखा है- “लोक हमारे जीवन का महा समुद्र है; उसमें भूत, भविष्य, वर्तमान सभी कुछ संचित रहता हैं। लोक राष्ट्र का अमर स्वरूप है, लोक कृत्स्न ज्ञान और सम्पूर्ण अध्ययन में सब शास्त्रों का पर्यवसान हैं। अर्वाचीन मानव के लिये लोक सर्वोच्च प्रजापति है। लोक, लोक की धात्री सर्वफूतमाता पृथ्वी और लोक का व्यक्त रूप मानव, यही हमारे नये जीवन का अध्यात्म शास्त्र है। इसका कल्याण हमारी मुक्ति का द्वार, और निर्माण का नवीन रूप

१ प्रो. ए. अच्युतन, लोक नाट्य एवं संस्कृति, पृ. २२.

है। लोक-पृथ्वी-मानव, इसी त्रिलोकी में जीवन का कल्याणतम रूप है।”<sup>१</sup> डॉ. हज़ारी प्रसाद द्विवेदी ने ‘लोक’ शब्द की व्याख्या करते हुए लिखा है- “लोक शब्द का अर्थ ‘जनपद’ या ‘ग्राम’ नहीं है बल्कि नगरों और गाँवों में फैली हुई वह समूची जनता है जिनके व्यावहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं हैं। ये लोग नगर में परिष्कृत, रुचि-सम्पन्न तथा सुसंस्कृत समझे जाने वाले लोगों की अपेक्षा अधिक सरल और अकृत्रिम जीवन के अभ्यस्त होते हैं और परिष्कृत रुचि वाले लोगों की समूची विलासिता और सुकुमारता को जीवित रखने के लिये जो भी वस्तुएँ आवश्यक होती है उनको उत्पन्न करते हैं।”<sup>२</sup> श्याम परमाल ने ‘लोक’ शब्द पर विचार करते हुए लिखा है- “लोक साधारण जन-समाज है, जिसमें भू-भाग पर फैले हुए समस्त प्रकार के मानव सम्मिलित हैं। यह शब्द वर्ग-भेद रहित, व्याप्त, एवं प्राचीन परम्पराओं के श्रेष्ठ राशि सहित अर्वाचीन सभ्यता- संस्कृति के कल्याणमय विवेचन का द्योतक है। भारतीय समाज में नागरिक एवं ग्रामीण दो भिन्न संस्कृतियों का प्रायः उल्लेख किया जाता है, किन्तु ‘लोक’ दोनों संस्कृतियों में विद्यमान हैं। यही समाज का गतिशील अंग है।”<sup>३</sup> लोक साहित्य के मर्मज्ञ एवं मनीषी डॉ. सत्येन्द्र ने ‘लोक’ को ‘फॉक’ का पर्याय स्वीकार करते हुए ‘लोक’ की परिभाषा इस प्रकार दी है- “लोक मनुष्य समाज का वह वर्ग है जो अभिजात्य संस्कार, शास्त्रीयता और पांडित्य चेतना और पांडित्य के अहंकार से शून्य है और जो एक परम्परा के प्रवाह में जीवित रहता है। ऐसे लोक की अभिव्यक्ति में जो तत्व मिलते हैं वे ‘लोक तत्व’ कहलाते हैं।”<sup>४</sup>

१ वासुदेव शरण अग्रवाल, सम्मेलन पत्रिका (लोक संस्कृति विशेषांक) २०००, पृ. ६५.

२ आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, (लेख) जनपद, अक्तूबर, १९५२, पृ. ६५.

३ डॉ. श्याम परमाल, लोक साहित्य विमर्श, पृ. ९-१०.

४ डॉ. सत्येन्द्र, लोक साहित्य विज्ञान, पृ. ४५.



डॉ. सत्येन्द्र की उपर्युक्त परिभाषा अधिक सार्थक प्रतीत होती है। वास्तव में 'लोक' में एक दृष्टि प्रधान है। 'लोक' एक ऐसा समुदाय है जो आधुनिक सभ्यता एवं शिक्षा से वंचित होते हुए प्राचीन विश्वासों तथा अनुष्ठानों को सुरक्षित रखे हुए हैं। लोक जीवन में समाविष्ट सम्पूर्ण भावात्मक एवं सृजनात्मक सामग्री, संपूर्ण विश्वास, मान्यताएँ, परम्पराएँ, प्रथाएँ और रीतियाँ लोक-वार्ता कहलाती हैं। लोक-साहित्य के लोक-वार्ता जो इस प्रकार है- लोकगीत (Folk-lyrics), लोकगाथा (Folk-ballads), लोककथा (Folk-tales), लोकनाट्य (Folk-drama), प्रकीर्ण साहित्य (Miscellaneous Literature) प्रकीर्ण साहित्य के अन्तर्गत लोकोक्तियाँ, मुहावरे, सूक्तियाँ, बच्चों के गीत, पालने के गीत, खेल के गीत इत्यादि आते हैं। जिनका व्यवहार गाँव के लोग अपने प्रतिदिन के व्यवहार में किया करते हैं। स्पष्ट है कि लोक एक विराट शब्द है और लोकगीत मोटे तौर पर लोकवार्ता के अन्तर्गत आते हैं और जनसाधारण में मौखिक रूप से जीवन्त रहती है।

### २.२.१.२ लोकगीत : परिभाषा

किसी भी चीज़ को परिभाषित करना इतना आसान नहीं है। लोकगीत में दो शब्द हैं 'लोक' और 'गीत'। लोक अपने आप में एक विराट शब्द है, अनेकार्थी है। गीत का भी विशिष्ट अर्थ है, हमारे देश में मौखिक लोकगीतों की लंबी परंपराएँ हैं। लोक साहित्य लोक चित्त में संचित सामूहिक चेतना और अनुभूति का साहित्य है। लोक साहित्य में आम जन-जीवन के राग-विराग, हर्ष-विषाद का जीवन्त चित्रण है। अनुभवों और अनुभूतियों का सरल और नैसर्गिक प्रतिबिम्ब लोक गीतों में आलोकित हैं। इन गीतों में जटिल जातीय संस्कारों का साक्षात्कार है। ऐसे लोक गीत को परिभाषित करना आसान नहीं है। फिर भी बहुत से देश-विदेश के विद्वानों ने लोकगीत को परिभाषित करने का प्रयास किया है।

“लोकगीत तो स्वतःजन्मा है”<sup>१</sup>

“आदिमानव के उल्लासमय संगीत को ही लोकगीत कहते हैं”<sup>२</sup>

“लोकगीत न तो नया होता है और न पुराना। वह तो जंगल के एक वृक्ष के समान है जिसकी जड़ें भूतकाल की ज़मीन में गहरी धँसी हुई हैं, परन्तु जिसमें निरन्तर नई-नई डालियाँ, पल्लव और फल उगते रहते हैं”<sup>३</sup> एक ओर देवेन्द्र सत्यार्थी - “लोकगीतों का मूल जातीय संगीत में”<sup>४</sup> ढूँढते हैं तो कुछ विद्वान “लोकगीत उन लोगों जीवन का स्वतोद्गर्णीय प्रवाह है जो आदिम अवस्था में जीवन बिताते हैं”<sup>५</sup> डॉ. सत्येन्द्र का विचार है कि “लोकगीत मानवीय कृतित्व की वह सामान्य धरोहर है जो विश्व-मानव की भूमि पर प्राप्त हुई है”<sup>६</sup>

लोकगीत का शाब्दिक अर्थ है जन-मानस का गीत, जन-जान का गीत। अतः जो गीत सम्पत्ति की तरह विरासत में मिले हो, वही लोकगीत है। “मन की प्रबलता और आत्मा की प्रेरणा से अनेक के हृदयगत भावों को संगीत ध्वनि से अभिव्यक्त करता है। उस ध्वनि को महासंगीत कहते हैं और वही महासंगीत वास्तविक लोकगीत है। लोकगीतों में बुद्धि-कौशल और साज-सज्जा का काम नहीं होता। लोकगीत वास्तव में आत्म तत्त्व

---

१ Grimm, A folk song composes itself - *Encyclopaedia Britannica-Vol.IX*, p.448

२ Percy, This primitive spontaneous music has been called folk- *Encyclopaedia Britannica-Vol.IX*, p.447

३ Ralph V. Williams, A folk song is neither new nor old, it is like a forest tree with its roots deeply burried in the past, but which continually puts forth new branches, new leaves, new fruits- *Encyclopaedia Britannica-Vol.IX*, p.448

४ Davendra Satyarthi, Its seed lies in community singing, *Meet my people*, p. 194.

५ K.B. Das, A folk-song is a spontaneous out-flow of the life of the people who live in a more or less primitive conditions, *A study in orrison Folklore Introduction*, p.1

६ डॉ. सत्येन्द्र, प्राक्कथन लेखक (हाडौती लोकगीत, चन्द्रशेखर भट्ट)

से अनुप्राणित होने से संस्कृति के प्रतीक हैं”<sup>१</sup> लोकगीतों के आचार्य डॉ. फ्रांसिस चाइल्ड का मत है- ‘लोकगीतों में उसके रचयिता के व्यक्तित्व का सर्वथा अभाव रहता है। उसकी वाणी में तो उसकी रचना अवश्य मिलती है परन्तु उसका व्यक्ति बिलकुल नहीं मिलता है। लोकगीतों का रचयिता इन गीतों की सृष्टि कर जनता के हाथें इन्हें समर्पित कर स्वयं अन्तर्धान हो जाता है”<sup>२</sup>

उल्लेखनीय बात है कि लोकगीत में मानव-हृदय की प्रकृत भावनाओं की तन्मयता की अवस्था की गति है, जो स्वर-ताल प्रधान न होकर लय या धुन-प्रधान होते हैं। हिन्दी साहित्य कोश में लोकगीत शब्द के तीन अर्थ दिये गये हैं- “लोक में प्रचलित गीत, लोकनिर्मित गीत, लोक विषयक गीत। इस तरह ऐसे गीत जो लोक द्वारा निर्मित हो, लोकविषयक हो तथा लोक में प्रचलित हो, लोकगीत कहे जाते हैं”<sup>३</sup> महाकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने कहा है- “यदि सब देशों के लोकगीत संकलित किये जा सकें और उनका तुलनात्मक अध्ययन हो तो यह प्रत्यक्ष होगा कि उनमें एक ही मन और एक ही हृदय छिपा है जो मनुष्य में समान है।”<sup>४</sup> श्री वासुदेव शरण अग्रवाल के अनुसार - “लोक गीत किसी संस्कृति के मुँह बोलते चित्र हैं।”<sup>५</sup> श्री सूर्यनारायण पारीख व श्री नरोत्तम स्वामी मानते हैं कि, “आदिम मनुष्य -हृदय के ज्ञानों का नाम लोक गीत है। मानव जीवन की, उसके उल्लास की, उसकी उमंगों की, उसकी करुणा की, उसकी समस्त सुख-दुःख की कहानी इसमें चित्रित होती है।”<sup>६</sup> लोकगीत की सत्ता ढूँढते विद्वान

१ डॉ. सुरेश गौतम, लोक साहित्य अर्थ और व्याप्ति पृ- ६७.

२ डॉ.फ्रांसिस चाइल्ड, English and scotish popular ballads, Introduction, p. 24.

३ डॉ. छोटेलाल बहरदार, लोकगीतों का समाजशास्त्रीय अध्ययन, पृ. २३ (से उद्धृत)

४ रवीन्द्रनाथ ठाकुर, मॉडेन रिव्यू, सितंबर, १९२४.

५ आजकल, नवंबर, १९५९

६ सूर्यनारायण पारीख, राजस्थान के लोकगीत (पूर्वाद्ध) प्रस्तावना, पृ. १-२.

मनीषी एवं आलोचक डॉ. सुरेश गौतम का कहना है- “यदि हमें मानवता को पुनर्जीवित करना है तो गीत को पहचानना होगा। लोकमानस की तरंगों को अपनाना होगा। गीत के वैराट्यबोध को समयानुकूल मानव कसौटियों पर मानव की बुनियादी वृत्तियों के साथ कसना होगा। बुद्धि और हृदय के बीच सेत संकल्पों को वृक्षधर्म बनाना होगा। यह कहा जा सकता है कि मानवता के अभ्युत्थान का सारा बोझ शायद आज गीत के ही कंधों पर है। गहरे में यदि सोचें तो यही सत्य उभरेगा कि गीत ही वह प्रथम भावनेता है जो मनुष्य को जगाकर उसके विकास का प्रयत्न करता है। उसकी आभ्यान्तरिक ऊर्जा के आन्दोलन का नेतृत्व गीत ही करता है। मानवता की सभ्यता का अभिव्यक्ति रूप गीत ही है। मानवता को हर गीत ने जगाया है, वह ‘वेद’ में हो, ‘कुरान’ में हो, ‘बाईबिल’ में हो, ‘गुरु ग्रन्थ साहिब’ में हो अथवा लोकगीत हो”<sup>१</sup>। गीत पर विचार करते लोक कला के विद्वान डॉ. नन्दलाल कल्ला का कथन महत्वपूर्ण हैं। उन्होंने कहा कि “लोकगीत लोकमानस की अगणित सुख, दुःखात्मक, हर्ष -विषाद मूलक, आशा, आकांक्षा-आशंका, उत्साह, निराशा, आह्लाद-अवसाद, मनोराग, मनोवेग, उल्लास, आस्था की सहज, स्वतः स्फूर्त, अकृत्रिम, रागों के बन्धन से मुक्त, सामूहिक चेतना से मण्डित संस्कारों वे तद्जनित अनुभूतियों की रागात्मक अभिव्यक्ति है। लय और ताल जिसके अनुचार तथा नृत्य जिसका सहचर है।”<sup>२</sup> उपर्युक्त परिभाषाओं से व्यक्त होता है लोकगीत सामान्य जन-जीवन के सुःख-दुःख, हर्ष-शोक तथा संस्कृति की खुला तस्वीर है।

लोकगीत का कोई रचयिता या लेखक नहीं होता। उसे किसी व्यक्ति की रचना नहीं कहा जा सकता। इसकी निर्मित सामाजिक है। अतः लोकगीत व्यक्ति का नहीं समाज का होता है। इसके अतिरिक्त लिपिबद्ध होने पर तो लेखक का महत्व होता है परन्तु लोकगीत मौखिक होते हैं लिपिबद्ध नहीं होते। अतः इसमें परिवर्तन होता रहता है। ये

१ डॉ. सुरेश गौतम, लोकगीत की सत्ता, पृ. ४२.

२ डॉ. नन्दलाल कल्ला, लोकगीत का भाष्य, पृ. ४५.

जनश्रुति से सम्बन्धित है। लोकगीतों में समूह प्रमुख होता है। इसमें एक सामूहिक भावभूमि तथा समूह के सामाजिक मूल्यों को अभिव्यक्त करने की शक्ति है। लोकगीतों का संसार सत्य का संसार है। हृदय में उत्पन्न होने वाले राग-विराग के सीधे-सच्चे भावों का सीधा और निश्चल प्रकटीकरण लोकगीतों की सबसे बड़ी विशेषता है लोकगीत सहज और अकृत्रिम होते हैं। ये गीत सामूहिक चेतना और लोकभावना पर आधारित है। लोकगीतों में भाव, लय, और मुग्धता पर अधिक ध्यान दिया जाता है। नैसर्गिकता, सामूहिक, भाव-भूमि, परम्परात्मकता, रूढ़िवादिता और संगीतात्मकता लोकगीतों की विशेषताएँ हैं। लोकगीतों का अस्तित्व मौखिक परम्परा के रूप में विद्यमान है प्रसिद्ध विद्वान सिजविक का कथन है कि “लोक साहित्य को लिपि बद्ध करना उसकी हत्या में सहायता देना है, जब तक वह मौखिक रूप में है, तभी तक उसमें जीवनी शक्ति है।”<sup>१</sup> वस्तुतः लोक की वास्तविक जीवन, धर्म, संस्कृति और समाज का असलियत ऐसे ही मौखिक साहित्य में विद्यमान है। लोकगीत ताल-लय के साथ गाये जाते हैं। लोकगीतों द्वारा जन-जीवन के समस्त पक्षों के दर्शन होते हैं और उनके दर्पण में हम विशिष्ट जन-समुदाय की भावनाओं को देख सकते हैं। हर जाति या जन-समाज के अपने गीत होते हैं जिनमें उस समाज की जीवनानुभूति की अभिव्यंजना पाई जाती है। ग्राम जीवन के संघर्ष की महान गाथा के प्रतीक लोकगीत ही हैं। ये समस्त जीवन की अभिव्यंजना के गेय माध्यम कहे जा सकते हैं। हर प्रदेश विशेष के साहित्य का मूल रूप गेय साहित्य (पाट्टु साहित्य) से है।

### २.२.१.३ परंपरागत दलित गीत

उपर्युक्त पृष्ठभूमि के आधार पर परंपरागत दलित गीत की प्रमुख एवं अर्थवत्ता पर चर्चा करना संगत ही नहीं अनिवार्य लगता है। संसार में जब से मानव है तब से उसकी

<sup>१</sup> Encyclopedia, Britanica (Ballad) p. 993.

अभिव्यक्ति भी है। उनका जीवन प्रकृति से प्रेरित, प्रकृति में ही समर्पित, प्रकृति की ताल-लय के साथ गुज़र कर, प्रकृति में ही लीन होकर जीते थे। ऐसे मानव जीवन के सभी नैसर्गिक भाव गीत के रूप में आये होंगे। ये गीत ही मानव को जगाकर उसके विकास का प्रयत्न करता है। इस प्रकार के गीत लोकगीत के नाम से जाना जाता है। दलित कविता की भावभूमि का जड़ लोकगीत है; दलित गीत है। दलित वर्ग के समाज, संस्कृति, अभिव्यक्ति, आर्थिक दशा सब दूसरों से अलग होने के कारण लोकगीत से दलित गीत को अलग किया जा सकता है, क्योंकि उसका सामाजिक आधार है। इन्हीं गीतों के माध्यम से दलित वर्ग के भाव, स्वानुभूति ठीक तरह समझ सकते हैं। श्री ओंप्रकाश वाल्मीकि ने दलितों की पृथक संस्कृति मानी है। वे कहते हैं- “भारतीय संस्कृति, हिन्दू संस्कृति, वैदिक संस्कृति, मुस्लिम संस्कृति, पाश्चात्य संस्कृति, इत्यादि की तरह दलित संस्कृति भी एक अलग प्रत्यय माना जाना चाहिए।”<sup>१</sup> उच्च और निम्न वर्ग के संस्कृति, सभ्यता, आचार-विचार, रहन-सहन, खान-पान, दुख, दर्द, स्वानुभूति आदि अलग होती है। दलित वर्ग के मौखिक अभिव्यक्ति उनके लोकगीतों में देखा जा सकता है। गीतकार जिस समाज या परिस्थिति से आता है, उस समाज की स्थिति को गीतों में व्यक्त करता है। दलित गीतों में जो विषय है वही दलित कविता का भावभूमि है। उदाहरण के लिए दलित स्त्रीयों पर होने वाले अत्याचार के अनेक चित्र इन गीतों में मिलते हैं। जैसे पेड़ काटने के लिए तो कभी जाति-झगडा समाप्त करने के लिए किसी दलित स्त्री को बली देनी पड़ती है।

“जाति झगड़ा खत्म करने

मुझे अपनी नीली को बलि देना है चबूतरे पर

देव बलि के लिए नीली को मारना है मुझे”।<sup>२</sup>

१ ओमप्रकाश वाल्मीकि, *दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र*, पृ. ४७.

२ डॉ. ए. अच्युतन, *मलयालम में दलित साहित्य दृष्टि और सृष्टि*, पृ. ६०.

इसमें निसहायवस्था और करुणा भाव ही इस दलित गीत का भावभूमि बनता है। समाजशास्त्र की दृष्टि से समाज की भयानक वातावरण का चित्रण हमारे सामने आया है। जाति झगड़े को खतम करने के लिए अपनी पत्नि को बली देना है। यह कहाँ की रीती है? यह कौन सी संस्कृति है? जो मानव को जान-बूझकर मारने का नियम रखा गया है।

मेहनत संस्कार दलितों की संस्कृति का मूल आधार है। वे मिट्टि के पुत्र हैं, मिट्टि ही उसका सबकुछ है। यह पंक्तियाँ हैं -

“अपने नन्हें बच्चों के साथ औरत भी खेत में हैं  
दादी माँ भी खेत में हैं/आदमी और सब हैं खेत में”<sup>१</sup>

दलित वर्ग का आर्थिक यथार्थ प्रतिबिम्बित करने वाला गीत भी है। सेखराम-शास्त्री का भोजपुरी लोकगीत इसका उदाहरण है-

“देसवा में महंगी मइलि बेतुमार बा।  
पाव भरक दाल-चार, आध सेर का गेहुआ  
खोजला पर मीलत नइस्वे भूजे खातिर महुआ  
मकई क दाना भइया बसिया हमार बा-देसवा में”<sup>२</sup>

इस गीत में उस समय की प्रत्यक्ष समाज का चित्रण है। देश में महँगाई बढ़ रही है। दलितों का जीना ओर भी संकट में हो गई है। उनके अभाव उन्हें आराम से जीने नहीं देता। रघुनाथ प्यासा का गीत उदाहरण के रूप में-

---

१ डॉ. ए. अच्युतन, *मलयालम में दलित साहित्य दृष्टि और सृष्टि*, पृ. ६०.

२ डॉ. रजतरानी मीनु, *हिन्दी दलित कविता*, पृ. २२.

“भूखे पेट न चलते हाथ/चरखा कैसे कातू रे ?  
कल परधान आय यूं बोलया मुफ्त ज़मीन दिला दूं  
भाषण में हमदर्दी फिर भी/औरत संग बलात  
भुखे पेट चले नहीं हाथ/ चरखा कैसे कातू रे”<sup>१</sup>

इस गीत में दलित वर्ग के भूख, प्यास, दरिद्रता और जीवन की जिजिविषा का कटु अनुभव को व्यक्त किया है। साथ में दलित औरत का शोषण शारीरिक एवं मानसिक रूप में भी हो रहा है। इस वेदनाजन्य परिस्थिति का उल्लेख किया है-

“सुखियाँ-दुखियाँ दोनो बहिनियाँ  
दोनों बधाबा लै आयी हरे राजा बीरन/सुखिया ले आई गुजहर गोड़हरा,  
दुखिया दूब कै पैड़ा हरे राजा बीरन”<sup>२</sup>

इस गीत में सामाजिक एवं आर्थिक स्थिति को व्यक्त किया है।

श्रम-कार्य करते समय गाये जाने वाले गीत को श्रम गीत कहते हैं, स्त्री-पुरुष इन गीतों की लय एवं भावभूमि में लीन हो जाते हैं-

“अन्धे आँख जरा तो खोलौ  
मत पर परीअ पथरिया नाँय”<sup>३</sup>

ये कजरी गीत पुरुष द्वारा गाये जाते हैं। कुछ गीत ऐसे भी है जो जाति विशेष द्वारा गाया जाता है-

---

१ डॉ. रजतरानी मीनु, हिन्दी दलित कविता, पृ. १२४, १२५.

२ विद्या चौहान, लोकगीतों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, पृ. ५३.

३ डॉ. महेश गुप्त, लोक साहित्य का शास्त्रीय अनुशीलन, पृ. १४६.



“कथा उचारन होता है सुनो वीर हनुमान,  
आसन आनेके लीजिऔ पवनपुत्र तुम अंजन के नंदलाल”<sup>१</sup>

दहेज प्रथा एक सामाजिक एवं पारिवारिक समस्या है। इसका शिकार नारी है।  
इसलिए बेटी का जन्म होने पर मुसीबतों का शुरुआत होती है-

“जिद्रिदन लाडो तेरा जनम हुआ, जनम हुआ है  
हुई बाज़र की रात”<sup>२</sup>

दलितों में अनेकों का संबन्ध खेती बाड़ी से है, जो हमेशा दूसरों के लिए काम  
करता है। दलित गीतों में शोषित कृषक जीवन का दयनीय चित्रण देखने को मिलते हैं-

“देसवा के सब धन धान, विदेसवा मे जाय रहे  
महंगी पड़त हर साल कृषक अकुलाए रहे”<sup>३</sup>

जाति सम्प्रदाय एवं अस्पृश्यता के खिलाफ अनेक गीत मलयालम दलित गीतों  
की सम्पदा में मिलते हैं। छुआछूत की प्रथा का व्यंग्यात्मक प्रस्तुतीकरण है -

“इंदेन्दु तीण्डलाणु तम्पुरान्ते तीण्डलु/मारडा मारडाव्ट्ड मारडा  
मारडा मारडा पाक्कनार मारडा।/अकासेतेबैताल आकासम् तोलयुमो  
पिन्नेन्तु तीण्डलाणु तम्पुरान्ते तीण्डलु/उप्पुकुत्या मुलक्कमो वेलीमें पडरुमो  
पिन्नेन्तु तीण्डलाणु तंपुरान्ते तीण्डलु।

इसका मतलब इस प्रकार है- यह कैसी छुआछूत अभिजातों की ये छुआछूत। हट  
रे..... हट- सामने से हट रे हट तू.... पाक्कनार सामने से हट जा तू। आसमान मे तीर

१ डॉ. महेश गुप्त, लोक साहित्य का शास्त्रीय अनुशीलन, पृ. १५१.

२ डॉ. सुरेश गौतम, भारतीय लोकगीत सांस्कृतिक अस्मिता, पृ. ५५.

३ वही, पृ. ५६.

चलाने से, आसमान क्या बिधेगा फिर यह कैसी छुआछूत अभिजातों की यह छुआछूत। बोलने से नमक क्या उगोगा, बाड़े में फैलेगा। फिर यह कैसी छुआछूत अभिजातों की यह छुआछूत।”<sup>१</sup> प्रस्तुत दलित गीत में उस समय की अस्पृश्यता को बहुत गहराई से व्यक्त किया है, जो आज के संदर्भ में भी प्रासंगिक है।

भारतीय समाज में जाति एवं वर्ण व्यवस्था के खिलाफ लड़ाई अब भी जारी है। इस संदर्भ में हम जानते हैं कि भारत में दलित क्रांति के उन्नायक डॉ. बाबा अंबेडकर ने हिन्दू धर्म को छोड़कर बौद्ध धर्म को स्वीकार करने का आह्वान किया था। स्वाभाविक है कि कुछ गीतों का विषय हिन्दू धर्म त्यागकर बौद्ध धर्म अपनाने के संबंध में है-

“हिन्दू धर्म छोड़ के करा बुद्ध क बतिया/बिपतियां ऐसे टारे से टरी”।<sup>२</sup>

इस तरह जीवन के हर पहलू से संबन्धित सच्चाई दलित गीतों के विश्लेषण में देखा जा सकता है। लोकगीत के अंतर्गत और भी ऐसा बहुत दलित गीत है जो दलित जीवन के जिजिविषा का द्योतक है। उसे दलित गीत ही कहना उचित है। दलित गीत के अन्तर्गत ऐसा भी बहुत गीत है जो जाति विशेष द्वारा गाये जाते हैं। ऐसे गीतों को जाति गीत कहते हैं। जैसे अहीरों के गीत, धोबियों के गीत, चमारों के गीत आदि। उल्लेखनीय है कि अहीर, चमार, कहार, धोबी सब समाज के निचले स्तर के लोग हैं। भारतीय समाज में दलितों के अन्तर्गत ज़्यादातर इसी जात के लोग हैं। अतः इन्हीं जाति गीतों को दलित गीत कहना ही उचित लगता है। धार्मिक गीतों के संबंध में डॉ. जोशी ने कहा - “किसी जाति विशेष द्वारा गाया जानेवाला गीत, जिसकी विषयवस्तु पौराणिक आख्यान से सम्बन्धित है, उस गीत को जाति गीत के अन्तर्गत रखना ही उचित होगा धार्मिक गीत के

---

१ डॉ. ए. अच्युतन, लोक नाट्यम एवं संस्कृति, पृ. ५९.

२ बयान-फरवरी, २००९, पृ. ४७.

अन्तर्गत नहीं”<sup>१</sup> उसी प्रकार डॉ. सत्य गुप्ता का कथन है, “क्योंकि कुछ गीत कुछ जाति विशेष द्वारा ही गाये जाते हैं। जैसे ‘चमार राग’। इसके नाम से ही स्पष्ट है यह केवल चमारों द्वारा ही गाया जाता है”<sup>२</sup>

‘अहीरों के गीत’ - प्रायः अहीरों के कुल देवता की पूजा के समय गाया जाता है-  
“झलरी भइ रे निविया झलडी/यानन पे निविया झलडी राहे”<sup>३</sup>

‘कहारों के गीत’ जनपद में ‘कहार’ जाति को ‘धीमर’ भी कहा जाता है। धीमर जाति के व्यक्ति सम्पन्न घरों में कुँ से पानी आदि लाने का कार्य करते हैं। इनके गीतों की विषय वस्तु विविधता से युक्त होती हैं। अतः यह गीत ताल-लय समन्वय है।

“कंकरिया काहे मारी रे/ओ भीमखाले लौंडा”<sup>४</sup>

‘धोबियों के गीत’ -घाट पर कपडे दोते समय वे गीत गाते हैं-

“छिओ राम छिओ, छोओ राम छिओ

आँगिया चुलिया, मईली रे हुई गई /बिन धोबिन को गाँउँ”<sup>५</sup>

जाति विशेष पर आधारित परंपरागत दलित गीत जैसे केवट, मल्लाह, मुसहर, अहीर, चमार, धोबी, पासी, नाई, भड़भूजा, गाडेरिया, कुम्हार, कहार, भंगी आदि गाँव के प्रत्येक जातियों की अपना अपना गीत हैं। इस तरह के गीत में दलितों की वेदना के साथ उसके प्रतिरोध का स्वर भी हैं।

---

१ महेश गुप्त, लोक साहित्य का शास्त्रीय अनुशीलन, पृ. ११७.

२ वही.

३ डॉ. महेश गुप्ता, लोक साहित्य का शास्त्रीय अनुशीलन, पृ. १४९.

४ वही, पृ. १५०.

५ वही, पृ. १५०.

उपर्युक्त विचार और विश्लेषण के आधार पर कह सकते हैं कि लोकगीत में दलितों के गीत और अभिव्यक्ति का पहचान अलग ही है। इसलिए इसे दलित गीत ही कहना चाहिए। यह दलित गीत ही दलित कविता का मूल आधार है। लोकगीतों की तरह दलित गीत भी दलित जीवन की विभिन्न रागात्मक वृत्तियों की अभिव्यक्ति होती है। इस अभिव्यक्ति के लिए जिस शैली का आश्रय लिया जाता है वह लयात्मक होती है। यह मानव-सभ्यता और संस्कृति के विकास पर प्रकाश डालते हैं। दलित गीत किसी एक जाति या व्यक्ति की धरोहर नहीं होते। ये तो दलित समाज में स्वतः ही उत्पन्न होते हैं और स्वतः ही उस समाज में एक पीढ़ी से दूसरी और तीसरी-चौथी पीढ़ी तक भिखरते-गूँजते चले जाते हैं। यह भाषा के प्रवाह के साथ बहती चली जाती है। ये जहाँ भी गाये जाते हैं वहाँ के शब्दों और उच्चारणों को इसलिए अपनाते चलते हैं कि उस मिट्टी के साथ उसका अटूट संबन्ध है। ऐसा होने से यह पता नहीं चलता है कि कौन-सा गीत कहाँ, किस परिस्थिति में उत्पन्न हुआ। परंपरागत दलित गीतों से हमें दलितों के इतिहास और परंपरा, घटनाएँ, रीति रिवाज, प्रकृति और संस्कृति का भी परिचय प्राप्त कर सकते हैं। दलित गीतों में जीवन के प्रति दलितों के मनोभाव ही व्यक्त होते हैं। अतः परंपरागत दलित गीत दलित कविता की भावभूमि के प्रमुख आधार है।

### २.३ हिन्दी दलित कविता का ऐतिहासिक परिवेश

उपर्युक्त दलित कविता की भावभूमि और परंपरागत दलित गीत के आधार पर दलित कविता की चर्चा संगत लगता है। दलित कविता की अपनी पहचान है, इतिहास है और संस्कृति है जो स्वाभाविक रूप से उस समाज से जुड़ी रहती है। अतः दलित समाज के बिना दलित कविता संभव नहीं है। दलित समाज का इतिहास का एक समाजशास्त्र है जिसमें पवित्र-अपवित्र, स्पृश्य-अस्पृश्य आदि तत्त्वों का महत्वपूर्ण स्थान है। दलित समाज को भारत के सामाजिक व्यवस्था ने अस्पृश्य और अंत्यज माना है। इसलिए अंत्यजों की कविता में वही पृष्ठभूमि आ जाती है जो सवर्णों की कविता में नहीं मिलता है। दलित

कविता के बृहत परिवेश में भारतीय सामाजिक व्यवस्था के जाति और वर्ण ही प्रतिनायक के रूप में अवतरित होते हैं।

दलित कविता के आरंभ और विकास की चर्चा के पहले दलित कविता को परिभाषित करना संगत ही नहीं अनिवार्य है।

### २.३.१. दलित कविता की परिभाषा

शब्दों पर विश्वास तथा संविधान के प्रति निष्ठा, महात्मा गौतम बुद्ध, बाबा साहब अंबेडकर, महात्मा फुले पर श्रद्धा आदि दलित कविता का आधार है। जातीयता, छुआछूत, उच्चनीचता को नकारने वाली यह कविता मानवता की रक्षक है। मानव एक है, मनुजता की आवश्यकता है यही धर्म मानने वाली आज का दलित कविता विद्रोही होकर भी एकता की पक्षधर है। दलित कविता दया की भीख नहीं माँगती बल्कि अपने अधिकार की पुकार करती है। दलित जीवन उनकी समस्या, बाबा साहब का संदेश, महात्मा गौतम बुद्ध का दर्शन, समता की स्थापना, जीने की प्रेरणा, विद्रोह, संघर्ष, समानता, एकता, दलितोद्धार, दलित अस्मिता, जातीयता का विरोध, संविधान आरक्षण आदि उसकी विशेषताएँ होती हैं। दलित कविता मानव समाज की भेदभाव रहित, उच्च-नीचता से हटकर सामाजिक क्रांति करना चाहता है। यह 'सर्वे भवन्तु सुखिना सर्वे सन्तु निरामया' की लोकहित सर्वोदय की कामना करता है। अतः दलित कविता आज के संवेदनशील, भावुक कवि के मन का दस्तावेज है।

दलित कविता भारतीय समाज को मानवीय मूल्यों के प्रति सजग बनाता है। सामाजिक चेतना एवं परिवर्तन की दिशा दिखाते हुए नव समाज की स्थापना करने का प्रयास करता है। यह जन्मसिद्धान्त, वर्णाश्रम व्यवस्था, मनुवादी चिंतन परंपरा, झूठी धार्मिक मान्यता का खंडन करता है। अतः अतीत का अनुभव, वर्तमान की निष्पूरता, भविष्य की चिंता दलित कविता का केंद्रीय विषय है। हाशिये पर खड़ा यह वर्ग अब

साहित्य के केंद्र में है, जिसका प्रेरणा स्रोत बाबा अंबेडकर दर्शन है। यह कविता केवल विद्रोही नहीं वह आत्मबोध, आत्मचेतना और सामाजिक परिवर्तन का चिंतन भी है। दलित कविता को परिभाषित करने का प्रयास बहुत से दलित गैर दलित कवि और विद्वानों ने किया है।

ओमप्रकाश वाल्मीकि कहते हैं- “जीवन संघर्ष में आदमी का सहारा बनकर जो हौसला दे, वही तो कविता है। कविता कला से ज्यादा जीवन की अदम्य लालसा, गतिशीलता की संवाहक है।”<sup>१</sup> दलित चिंतक कंवल भारती ने वर्तमान दलित कविता के बारे में यों कहा- “यह वह कविता है, जिसे शोषित, पीड़ित, दलित अपने दर्द को अभिव्यक्त करने के लिए लिखता है। यह वह कविता है, जिसमें दलित कवि अपने जीवन के संघर्ष को उतारता है। यह दमन, अत्याचार अपमान और शोषण के खिलाफ युद्धगान है। यह स्वतन्त्रता समानता और भातृत्व -भाव की स्थापना और लोकतन्त्र की प्रतिष्ठा करती है, इसलिए इसमें समतामूलक और समाजवादी समाज की परिकल्पना है। संक्षेप में दलित कविता जाति और वर्ग-विहीन समाज की स्थापना करने वाली दलितों द्वारा लिखी गयी क्रान्तिकारी कविता है।”<sup>२</sup> डॉ. सत्यप्रेमी ने दलित कविता की व्याख्या दी है- “समकालीन दलित कविता शोषित, प्रताड़ित, अपमानित दलित जन साधारण की आवाज़ है।”<sup>३</sup> दलित साहित्य के प्रतिष्ठित रचनाकार मोहनदास नैमिशराय का कहना है- “दलित कविता एक सामाजिक आन्दोलन का सामाजिक प्रतिफलन है। अन्य काव्यधाराओं और साहित्यिक परंपराओं की अपेक्षा उसका सीधा सम्बन्ध जीवन से

---

१ ओमप्रकाश वाल्मीकि, *दलित चेतना*, (कविता)पृ. ३

२ कंवलभारती, *दलित कविता का संघर्ष*, पृ.१३.

३ जयप्रकाश कर्दम, *दलित साहित्य की वार्षिकी २००९-२०१०-*, पृ.११५

४ मोहनदास नैमिशराय, *दलित साहित्य का सौंदर्य शास्त्र*, पृ.५८

हिन्दी के दलित साहित्यकार डॉ. तेज सिंह का कहना है- “दलित साहित्य की शुरूआत कविता से होती है, और आज भी कविता उसका प्रमुख विधा है। आज की दलित कविता अपनी परंपरा को आत्मगत करके विकसित हुई है। उन्हीं के रचनात्मक अनुभूति में बदलकर दलित कविता को परिपक्वता के मुकाम तक ले गई है।”<sup>१</sup> गैर दलित लेखिका विमल थोरात लिखती है कि- “दलित कविता व्यक्तिगत अनुभवों से सम्पृक्त होने के साथ ही समूह-मन के अनुभवों की अनुभूति भी है।”<sup>२</sup> प्रो. तुलसी राम का कहना है - “दलित काव्य विधा ने कल्पना के उन तमाम चढ़ौनों को उतार फेंका है, जिन्हें परम्परागत कविता का मूल स्रोत मान लिया गया था। दलित कविताओं में सामाजिक यथार्थ वैसे ही निहित होता है, जैसे प्लास्टिक से घिरे तारों में विद्युत धारा”<sup>३</sup> डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी लिखते हैं- “मेरी दृष्टि में आधुनिक दलित कविता आक्रोश, विद्रोह और संघर्ष के सातत्य सौंदर्य की कविता हैं। अतः दलित कविता दलित कवियों के सामूहिक चीत्कार, गूँगों की आवाज़ और आक्रोश की अभिव्यक्ति है।”<sup>४</sup> दयानन्द बटोही का विश्वास है कि- “दलित कविता आज के माहौल को चकाचौंध नहीं करती बल्कि नई ऊर्जा देती हैं।”<sup>५</sup>

भारतीय संदर्भ में दलित कविता वर्णव्यवस्था का विरोध करके समानता एवं मानवता को समाज में स्थापित करना चाहती है। इस प्रकार सृजन को अपना हथियार बनाकर आज दलित कवि आगे बढ़ रहे हैं। दलित कविता ने डॉ. बाबा साहेब अंबेडकर

१ जयप्रकाश कर्दम, *दलित साहित्य की वार्षिकी*, २००६, पृ.१७

२ मोहनदास नैमिशराय, *दलित साहित्य का सौंदर्यशास्त्र*, पृ.११७

३ प्रो. तुलसीराम, (वह दिन ज़रूर आएगा), आवरण

४ डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी, *दलित साहित्य सृजन के संदर्भ*, पृ.१५५

५ रमणिका गुप्ता, *दलित चेतना : साहित्य एवं सामाजिक सरोकार*, पृ.१०८

के व्यक्तित्व, कृतित्व और चिन्तन तथा विद्रोह की पूर्व परम्परा से प्रेरणा लेकर दलित जीवन के विविध अनुभवों को अभिव्यक्त करके एक नया आयाम दिया है।

### २.३.२ हिन्दी में दलित कविता का आरंभ और विकास

दलित कविता समय की ज़रूरत है और वह समय के अनुरूप ही अपने आकार-प्रकार (शिल्प) में ही नहीं, संवेदना में भी परिवर्तन करती रहती है। चूँकि कविता प्रकृत है, अतः प्रकृति की ही तरह परिवर्तनीय है। दलित कविता की शुरुआत परंपरागत दलित गीत से मानना ही उचित रहेगा। कई दशकों के बाद दलित और दलित साहित्य आज जिस मंजिल पर पहुँचा है, उसमें कविता का योगदान सबसे प्रमुख रहा है। दलित कविता की पृष्ठभूमि, प्रस्फुटन संवेदना और वर्तमान स्थिति की पड़ताल करने के लिए थोड़ा पीछे जाना पड़ेगा क्योंकि उसकी शुरुआत दलित गीत से हुई थी। हिन्दी प्रदेश में जिस तरह गीतों की परंपरा दिखाई देती है उसी प्रकार भारतीय संदर्भ में भी अन्य प्रादेशिक भाषाओं में भी गीत की सुदृढ़ परंपरा देखने को मिलती है। जहाँ तक दलित गीत का सवाल है, दक्षिण भारत के संघकालीन कृतियाँ पूरे के पूरे गीत में ही रचे गये हैं।

#### २.३.२.१ संघकालीन कृतियाँ

तमिल संघियों के गीतों को बाद में तमिल पण्डितों द्वारा लिखित रूप में प्रकाशित किया है। इन अठारह कृतियों को 'संघकृतियाँ' नाम से जाना जाता है। दो हज़ार साल या उससे पहले दक्षिण भारत की स्थिति क्या थी, वहाँ के निवासियों का आचार-विचार, जीवन-शैली, खेती, व्यवसाय, आचार, भाषा, साहित्य कला, संस्कार, राजा-प्रजा, जाति, समाज में स्त्रियों का स्थान, प्रेम, भक्ति, युद्ध, जल, जंगल, पशु-पक्षी आदि सब जानकारियों का पूर्ण रूप संघकालीन कृतियों के छोटे-छोटे गीतों में देखने को मिलते हैं। "संघकालीन अठारह कृतियों को दो भागों में विभाजित किया है। अहम् (आन्दरिक) काव्य तथा पुरम (बाहरी) काव्य। उल्लेखनीय है कि प्रेम, भक्ति आदि हृदय सम्बन्धी बातें



अहम में तथा युद्ध, शासन, नीति, दान, उपदेश, यश आदि बातें पुरम के अन्तर्गत आते हैं।”<sup>१</sup> अहम संग्रह में आठ किताबें हैं, इसे एट्टुतोगै (आठ गाथा संग्रह) तथा संग्रह में दस किताबें इसे पत्तुपाट्टु (दस गीत) नाम से जाना जाता है। “ऐंगुरुनूरु नामक कृति ओरम्बोक्कियार, अम्मूवनार, कपिलर, ओदालान्दैयार और पेयनार नाम के पाँच महाकवियों ने रचा है। कुरुचिं या पहाड़ी क्षेत्र का प्रकृति वर्णन कपिलर ने किया है। पालै या बालू प्रदेश का वर्णन ओदलान्दैयार ने किया है। मुल्लै या चरागाह प्रदेश के बारे में पेयनार ने गाया है। नैदल या तटवर्ती प्रदेश का वर्णन अम्मूवनार ने किया है। मरुदन या कृषि प्रदेश की विशिष्टता ओरम्बोक्कियार की कविताओं में मिलती है। पाचों प्रदेशों के जनजीवन एवं संस्कार इसमें वर्णित हैं। इसमें प्रत्येक संस्कार-भाग के दस प्रकरण होते हैं, प्रत्येक प्रकरण में दस कविताएँ होती हैं। यह चेर नरेश चेरलिरुम्पोरै के तत्वावधान में कूड़लूर किळार द्वारा संकलित किया गया था।”<sup>२</sup> संघकृतियों में एट्टुतोगै (आठ ग्रन्थ संग्रह) के आठवाँ ग्रन्थ है पुरनानूरु। इसमें चार सौ गीत हैं लेकिन ३९८ गीत ही आज अपलब्ध हैं। १५३ कवि और कवयित्रियाँ इसका गायक हैं। उसमें १६ कवयित्रियाँ भी हैं। इससे यह पता चलता है कि उस समय स्त्रियों के लिए शिक्षा एवं साहित्य के दरवाज़ा बंध नहीं थे। ज्यादातर गीत अब्बयार की हैं, जो नेडुबंर आंजि की प्रशंसा करके गायी थी। ऐसा कहा जाता है कि अब्बयार से पहले काकैपोडिनियार और नचेलैयार नामक कवयित्रियाँ भी जीवित रहे थे। पतिट्टिप्पतु संघकालीन कृति है जो दस राजाओं के बारे में दस कवियों के दस गीत संग्रहों का संकलन है। उल्लेखनीय बात यह है कि इस गीत के रचनाकार दलित जात के रहे हैं। “चिल्पतिकारम के रचयिता इलंकोवडिकल ने कल्याणपाट्टु, अम्मानपाट्टु (शादी के गीत), ऊंजाल पाट्टु, पन्तडिपाट्टु, (गेंद खेलते समय गाये जाने वाले गीत), कुरत्ति पाट्टु (कुरवन की स्त्री कुरती), एरमंगलम पाट्टु

१ कवियूर मुरली, पुरनानूर एक अध्ययन, (मलयालम), पृ. ३२

२ डॉ. ए. अच्युतन, लोक नाट्य एवं संस्कृति, पृ. ५६.

(खेती बाड़ी के समय गाये जाने वाले गीत) आदि की ओर संकेत किया है।<sup>१४</sup> ये सारे गीत देशी भाषा में हैं, ताल-लय बद्ध है। इसी प्रकार मराठी, गुजराती, पंजाबी, कन्नड़, मलयालम आदि भाषाओं के साहित्यिक इतिहास में भी इस तरह के गीत देखने को मिलेगा। स्वाभाविक रूप से मानना पड़ेगा कि दलित कविता का आरंभ इन्हीं दलित कवियों की रचनाओं से हुई है।

हिन्दी साहित्य के इतिहास पर नज़र डाले तो हमें दिखाई देता है कि भक्ति आन्दोलन का मूल स्वर जातिवाद विरोधी है, और वह आन्दोलन निम्न जातियों से आए सन्तों ने चलाया। मैनेजर पाण्डेय ने कहा है- “हिन्द क्षेत्र में जातिवाद के विरोध का स्वर भक्ति आन्दोलन से भी कुछ पीछे से मिलता है। बौद्ध परम्परा के सिद्धों ने ब्राह्मणवाद, धार्मिक पाखण्ड, जातिप्रथा आदि के विरोध का स्वर बुलन्द किया, जिसकी प्रतिध्वनि नाथ समुदाय के कवियों की रचनाओं में भी मिलती है। सिद्ध कवि सरहपा की रचनाओं से कबीर की तुलना कीजिए तो कबीर सरहपा के सच्चे उत्तराधिकारी साबित होंगे।”<sup>१५</sup> भक्ति आन्दोलन में रैदास, कबीरदास, चोखामेला, तुकाराम जैसे कवियों ने अपनी रचनाओं में दलित समुदाय की आकांक्षाओं को वाणी दी। दलित समुदाय से अलग इन कवियों की रचनाओं में यद्यपि प्रार्थना का स्वर प्रधान है, लेकिन उसके साथ ही जाति व्यवस्था को तोड़ने का अनुरोध और आग्रह भी है।

### २.३.३ नाथ, सिद्ध एवं संत साहित्य और दलित कविता का मूल स्वर

धर्म के नाम पर एक वर्ग को सामाजिक, मानसिक और आर्थिक शोषण सहते हुए भारत में शताब्दियाँ बीत गईं। लेकिन जैसे ही उस वर्ग में ज़रा-सी चेतना आई, उसके

१ डॉ. ए. अच्युतन, *लोक नाट्य एवं संस्कृति*, पृ. ५७-५८.

२ डॉ. पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी, *दलित साहित्य सृजन के संदर्भ*, पृ.११२

विद्रोह का विस्फोट हुआ। मोटे तौर पर दलित कविता उसका ही परिणाम है। यद्यपि हिन्दी में इस चेतना का आरंभ आदिकालीन सिद्ध-नाथ साहित्य में मिलता है। सिद्धों में सरहपा, शबरपा, लुइपा, डोंभिपा, कणहपा आदि का नाम मुख्य है।

सरहपा ने पाखंड और आडंबर का विरोध किया तथा सेवा को महत्व दिया-

“नाद न बिंदु न रवि न राशि मंडल/चिअराअ सहाबे मूकल।

अजुरे अजु छाडि मा लेहु रे बंक/ निअहि बोहिमा जाऊ रे लांक”<sup>१</sup>

सिद्ध कणहपा भी भारतीय रूढ़ियों का खण्डन किया-

“आगम वेअ पुराणे, पण्डित मान बहंति।

पक्क सिरिकल अलिस, जिम वाहेरित भ्रमयंति।।<sup>२</sup>

गोरख नाथ को नाथ साहित्य के आरंभ कर्ता माने जाते हैं। इसके अन्य कवि हैं, चौरंगीनाथ, गोपीचंद, चगुकरनाथ, भरभरी, जलंग्रीपाव आदि प्रसिद्ध हैं। गोरखनाथ शूद्रों को भी शिक्षा देने के पक्षधर थे। गोरखनाथ के कई सिद्ध निम्नवर्ग के भी हैं, वे कहते हैं-

“वैसन्दर मुनि मुषि ब्रह्म जो होते, सुद्र पढ़ाऊँ बानी।

असंवेद विधि ब्रह्म जग निपजा मैंने जुगाति जमाया पानी”<sup>३</sup>

मन्दिर-मस्जिद के सम्बन्ध में वे कहते हैं-

“हिन्दु धयावे देहूरा, मुसलमान मसीत।

जोगी धयावै परम पद जहाँ देहुरान मसीत”<sup>४</sup>

---

१ डॉ.नगेन्द्र, डॉ. हरदयाल (सं.), *हिन्दी साहित्य का इतिहास*, पृ. ५९.

२ वहीं, पृ. ६०.

३ माताप्रसाद, *हिन्दी काव्य में दलित काव्यधारा*, पृ. ४०.

४ माताप्रसाद, *हिन्दी काव्य में दलित काव्यधारा*, पृ. ४०.

सिद्धादि तांत्रिक संप्रदायों की सामान्य प्रवृत्तियों के बारे में बताते हुए डॉ. शिवकुमार शर्मा का कहना है कि, “प्रत्येक संप्रदाय में वैदिक देवताओं के प्रति अनास्था प्रकट की गई है और उनके स्थान पर स्थानीय देवताओं और उनकी असंस्कृत पूजन पद्धतियों को प्रक्षय दिया गया है। सब संप्रदायों ने ब्राह्मवाद की पौराणिक रूढ़ियों का खण्डन और वेदों के प्रति असम्मान दर्शाया है।”<sup>१</sup> सिद्ध साहित्य में बौद्ध तांत्रिक सिद्धांतों को मान्यता मिली थी। “इसके चौरासी सिद्ध रचयिताओं में कुछ शीलपा, छत्रपा, ततैया, कुसुलिया महिलापा, राहुलापा, धीकरिया, चेकुलपा, निर्गणपा, भिखनपा, कलकलपा, घहरिपा, कमलपा, सर्वभक्षण, पुतुलिया, उपानहपा, अनगपा आदि अधिकांश सिद्ध जन्म के शूद्र क्षत्रिय थे। कुछ सिद्धों ने अपने समय की परिस्थितियों के परिणामस्वरूप अपनी कविताओं में विद्रोह का स्वर भर दिया था”<sup>२</sup> समाज के सबसे निचले स्तर की जनता भी वर्ण-जाति के विरुद्ध आवाज़ उठाया था।

यद्यपि हिन्दी में इस चेतना का आरंभ पहले ही हुआ है। लेकिन संगठित एवं व्यवस्थित स्वरूप मध्यकाल में ही देखने को मिलता है। मध्यकाल में हिन्दू धर्म कर्मकांड तथा अंधविश्वास के जाल में थे। शूद्रों को अछूत एवं सछूत दो भागों में विभक्त कर दिया तथा अनेक जातियों में बांट दिया गया। ठीक उसी समय भक्ति आन्दोलन के कुछ साहसी संत सुधारक आगे आए जिन्होंने सामाजिक परिवर्तन में योगदान दिया। इनमें मुख्य है- संत रैदास, कबीर दास, नामदेव, गुरु नानक देव, संत तुकाराम आदि। संतों ने मानव और मानव के बीच समता का समर्थन किया। उन्होंने “ईश्वर की दृष्टि में सब बराबर है” का प्रचार किया और वर्गहीन, वर्णहीन तथा जातिविहीन समाज के निर्माण में योगदान दिया।

१ डॉ. शिवकुमार शर्मा, *हिन्दी साहित्य: युग और प्रवृत्तियाँ*, पृ. ३२.

२ डॉ. बलवन्त साधु जाधव, *प्रेमचन्द साहित्य में दलित चेतना*, पृ. ५५.

संत रैदास का आर्विभाव ऐसे समय में हुआ जब देश के चारों तरफ जाति-पाँति, उँच-नीच की दूषित मानसिकता दूर-दूर तक फैली हुई थी। इस मानसिकता को दूर करने के लिए तथा एक स्वस्थ समाज का निर्माण के लिए उन्होंने कठिन प्रयत्न किया। उनकी वाणी इसका प्रमाण है-

“एकै माटी के सभै भाडे, सब का एकै सिरजनहार।  
रैदास व्यापै एकौ घट भीतर, सभ को एकै घडे कुम्हार।  
रैदास एकै ब्रह्म का होई रहयों सगल पसार।  
एकै माटी सब घट स्रजै, एकै सभ कूं सरजनहार।”<sup>१</sup>

रैदास की जाति चमार थी। इस तथ्य को उन्होंने बार-बार अपनी रचनाओं में स्पष्ट किया है-

“नागर जना मेरी जाति विख्यात चमार/कहे रैदास खलास चमार।”<sup>२</sup>  
यही नहीं रैदास ने अपनी वाणी में खुलकर अपने पेशे और जाति का वर्णन किया है-

‘जाके कुटुम्ब के ढेढ़ सभ ढोर ढोत/फिरहिं अजुह बनारसी आस-पास’<sup>३</sup>

संत-कवियों में अधिकांश तथाकथित निम्न जातियों से आए थे। रैदास ने अपनी सामाजिक स्थिति का चित्रण दो साखियों में इस प्रकार किया है -

“जा देष्या धिन उपजै, नरक कुंड महं वास।  
प्रेम भगति सौ ऊबरै, प्रकट जान रैदास।  
रैदास तू कांवचि फली, तुझं हुं न छिवे कोई।  
तै निज नावं न जाणियाँ, बला कहाँ ते होई।”<sup>३</sup>

---

१ डॉ.एन सिंह, रैदास ग्रन्थावली, पृ. ९०.

२ डॉ.एन सिंह, रैदास ग्रन्थावली, पृ. ८५.

३ वहीं, पृ.५०

रैदास जैसे लोगों को देखते ही शेष समाज में घृणा व्याप्त हो जाती है, और उसे रहने के लिए गाँव का बाहरी तथा अंतिम हिस्सा ही हमेशा उपलब्ध होता है। इसलिए रैदास कौंच की फली जैसा अछूत को मानते हैं। ऐसे लोगों के लिए शिक्षा, ज्ञान और उपासना के सब द्वार बंद थे। ऐसे संदर्भ में संतों ने प्रभु को अपने मन के अंदर ढूँढ़ा और पाया तथा हिंदू धर्म की असमानता पर आधारित वर्णव्यवस्था और पाखंड पर चोट की। संत कवि रैदास जाति-पांति की विचारधारा को नकारते हुए सामाजिक परिवर्तन की विचारधारा को गति प्रदान करते हैं। जब भारत विदेशियों के हाथों से गुलाम हो चुका था उस स्थिति में रैदास ने आन्तरिक विषमताओं से ही नहीं बाहरी शक्तियों से भी लड़ने की प्रेरणा थी-

“पराधीनता पाप हे जान लेहु रे मीत।

रैदास दास प्रधीन सौ करे है प्रीत।”<sup>१</sup>

संत रैदास ने तो १५ वीं सदी में ही कह दिया था कि-

“जनम जात मत पूछिये, का जात अरु पात

रैदास पूत सभ प्रभु के, कोउ नहिं जात कुजात।

जात पात के फेर महि, उरझि रहई सब लोग

मानुषता कूं खात हुइ, रैदास जात का रोग”।<sup>२</sup>

संत रैदास की इन पंक्तियों से उनके व्यापक और मानवतावादी दृष्टिकोण का परिचय मिलता है। रैदास भगवान को अपने मन के अंदर ही पूजा करते हैं। इसलिए रैदास कहते हैं —

“का मथूरा का द्वारिका का काशी हरिद्वार।

१ डॉ.एन सिंह, रैदास ग्रन्थावली, पृ. १३७.

२ डॉ.एन.सिंह, रैदास ग्रन्थावली, पृ. १२८.

३ वही, पृ. १५२.

रैदास खोजा दिल आपना तउ मिलिया दिलदार ।।”<sup>१</sup>

रैदास जानते थे कि यह पराधीनता की स्थिति हिन्दू धर्म के नियन्ताओं द्वारा निर्मित समाज व्यवस्था की देन है, जिसका आधार वर्ण व्यवस्था है। अतः रैदास ने अपने काव्य में वर्ण व्यवस्था के निर्माताओं को मूर्ख करार देते हुए लिखा है कि -

“रैदास एक बूंद सौं सब ही भयो वित्थार ।

मूरिख हौं जो करत हो, वरन अवरन विचार ।।”<sup>२</sup>

रैदास आगे व्यक्त करते हैं कि एक ही बूंद से जन्म लेकर भी एक व्यक्ति ऊँचा हो जाता है। दूसरे नीच हो जाता है। ऐसा क्यों होता है? रैदास का यह प्रश्न हमारी संपूर्ण चेतना को झकझोर देता है-

“रैदास एक ही नूर ते जिमि उपज्यो संसार ।

ऊँच नीच किहि विधि भए ब्राह्मण और चमार ।।”<sup>३</sup>

उपर्युक्त वाणी से यह स्थापित हो जाता है कि संतों में प्रमुख रैदास के मन में तत्कालीन सामाजिक व्यवस्था के प्रति कितना आक्रोश था, साथ ही उसकी मानवतावादी दृष्टिकोण स्पष्ट दिखाई देता है।

संत कबीर दास का युग सामाजिक विश्रुंखलता का युग था। संत कवियों की धारणा थी कि ईश्वर भक्ति पर सबका अधिकार है। वह किसी जाति विशेष की वस्तु नहीं है। ऐसी स्थिति में उन्होंने निर्गुण, निराकार, अगम अगोचर ब्रह्म की स्थापना की। संत कबीर इस असमानतामूलक व्यवस्था के प्रति गहरा आक्रोश व्यक्त करते हैं -

---

१ डॉ. एन सिंह, रैदास ग्रन्थावली, पृ. १५२.

२ डॉ.एन सिंह (सं.), रैदास ग्रन्थावली, पृ.८९.

३ वहीं, ८९.

“जाति पांति पूछै नाहीं कोई/हरि को भजै सो हरि का होई।”<sup>१</sup>

“काशी का जुलाहा चीन्ह न मोर गियाना।

तू जो बामन बामनी जाया और राह है क्यों नहीं आया”।<sup>२</sup>

कबीर ने अपने इस पद में ईश्वर को जाति-पांति से परे की वस्तु बताया है।  
कबीरदास कहते हैं-

“ना मंदिर में, ना मस्जिद में, ना काबा कैलास में

मुझको कहाँ ढूढ़े रे बन्दे, मैं तो तेरे पास में।”<sup>३</sup>

कबीर दास समाज में पाये जानेवाले जातपात का विरोध करते थे। वे कहते हैं-

“संतन जात न पूछे निरुगुनियाँ/ साध ब्राह्मण साध छतरी

साधै जाती बनियाँ/ साधन माँ छतीस कौम है टंडी तोरपुछनियाँ

हिन्दु तुर्क दुई दीन बने हैं कुछ नहीं / पचानि याँ।”<sup>४</sup>

दादू दयाल ने कबीर के समान खण्डन और वाद-विवाद न करते हुए उन्हीं प्रसंगों  
को लिया है जो निर्गुण मार्गियों की वाणी हैं -

“कोई रोम कोई अलह सुनावै, पुन अलह रोम

का भेद न पावै/कोई हिन्दु कोई तुरक करि मानै, पुनि हिंदू

तरक की खबरि न जानै।”<sup>५</sup>

गुरु नानक ने भी कहा-

---

१ आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, पृ. १००

२ वहीं, पृ. १०७.

३ आचार्य हज़ारी प्रसाद द्विवेदी, कबीर, पृ. १०२.

४ वहीं, पृ. १७९.

५ पुत्री सिंह, भारतीय दलित साहित्य परिप्रेक्ष्य, पृ. ६३



“अव्वल अल्ला नाम है पाया, मालिक दे सब बंदे

एक मूर ते सब जग उपजिया, कौन भले कौन मंदे”<sup>१</sup>

“क्षत्री, ब्राह्मण, शूद्र, वैश, उपदेश चौ वरणों के सांझा”<sup>१</sup>

संत नामदेव भी समाज के ऊँच-नीच भेद-भाव के प्रति प्रश्न चिह्नन लगते हुए पूछते हैं-

“नाना वर्ण गावा उनका एक वर्ण दूध।

तुम कहाँ के ब्राह्मण हम कहाँ के सूद”<sup>१</sup>

संत चोखामेला अछूत होने का कारण समाज उनको हीन समझकर उन पर अत्याचार, व अन्याय करता था। इस स्थिति में वे पूछते हैं-

“हमारी की हीन जाति/तू क्यों न समझता श्रीमती

जन्म गवाया जूठन खाते/क्यों लाज

तुम्हें नहीं आती हमारे घर नहीं भात

खाकर कहते कहीं नहीं, कर्म मेरा कहे चोखा से

क्यों मुझे जन्म दिया”<sup>४</sup>

संत तुकाराम भी वर्णव्यवस्था से तंग आकार इस प्रकार अपने दुःख प्रकट करते हैं-

“शूद्र वंश में जन्म लिया/इसलिए दंभ से मुक्त हूँ

---

१ श्री गुरुग्रन्थ साहब, पद, महला -१

२ वही, १

३ माताप्रसाद, हिन्दी काव्य में दलित काव्य धारा, पृ. ४२.

४ श्री. स. भा. कदम द्वारा संपादित चोखामेला महाराज की अभंगगाथा से उद्धृत

शब्दोच्चार करने का मुझे नहीं अधिकार

सर्व और सेदीन तुका कहे याति हीन'<sup>१</sup>

इस प्रकार सिद्ध, नाथ एवं संतों ने वर्ण, जाति, आडंबर आदि का विरोध किया साथ-साथ सामाजिक व्यवस्था पर अपना विचार प्रकट किया।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि हिन्दी दलित कविता का आरंभ परंपरागत दलित गीत से माना जा सकता है। इसी परंपरा को सिद्ध-नाथ-संत साहित्य ने आगे बढ़ाया। मध्यकाल में साहित्य का मूल स्वर संतों की वाणी है। इसी पृष्ठभूमि में दलित कविता के आधुनिक काल का विवेचन संभव हो सकता है।

### २.३.४ दलित कविता और आधुनिक काल

हिन्दी में दलित कविता का आधुनिक काल कब से माना जाए? ये विद्वानों में मतभेद हैं। नाथ, सिद्ध, रैदास, कबीर, दादू, नानक आदि कवियों के बाद कई दशक तक हिन्दी दलित कविता लगता है, मौन धारण कर लिया। वास्तव में इस अवधि में भी समाज के वही स्थिति थी जो पहले था। संतों ने वर्ण, जाति और आडंबर के खिलाफ विद्रोह करते रहे। स्वतन्त्रता संग्राम के आन्दोलन के साथ मिलजुलकर सामाजिक कुरूपति एवं अनीति के खिलाफ सच्चे कवि विद्रोह करते रहे। इसका विस्तार से विवरण दलित आन्दोलन के संदर्भ में आगे चर्चा करेंगे। जो भी हो हिन्दी में दलित कविता का आधुनिक काल इसी बीच माना जा सकता है। दलित कविता के आधुनिक काल में हीरा डोम, स्वामी अछूतानन्द हरिहर, बिहारीलाल हरित आदि कवियों का महत्वपूर्ण स्थान है।

#### २.३.४.१ हीरा डोम

---

१ डॉ. बी.आर अंबेडकर ब्रह्मिष्कृत भारत (मूल मराठी) अंक ९, २९ जुलाई १९२७.

आधुनिक काल में दलित कविता का प्रारम्भ सितम्बर, १९१४ में 'सरस्वती' पत्रिका में प्रकाशित श्री हीरा डोम की भोजपुरी कविता से माना जाता है। जिसका शीर्षक था 'अछूत की शिकायत' इस कविता की कुछ पंक्तियाँ हैं। कवि दलित संस्कृति का परिचय कराते हुए कहते हैं-

“बभने के लेखे हम भिखिया न मांगबजा,  
ठकुरे के लेखे नाहिं लउरि चलाइबि।  
सहुआ के लेख नहिं गइया चोराइबि !  
भटऊ के लेखे न कबित्त हम जोरबजां,  
पगडी न बान्हि के कचहरि में जाइबि।  
अपने पसिनवा के पड़सा कमाइबजां,  
घर भर मिलि जुलि बांठि चोंटि खाइबी”।

आशय यह है कि, दलित अपने रोजी रोटी श्रम और ईमानदारी से कमाता है। वह ब्राह्मण की तरह न भीख माँगता है, ठाकूर की तरह न लाठी चलाता है, अहीर की तरह न गाय चुराता है। तथा न पगड़ी बांधकर कचहरी में जाता है। वह सिर्फ अपने पसीने की रोटी परिवार के साथ मिलजुल कर खाता है।<sup>१</sup> इसी कविता की अन्य कुछ पंक्तियाँ हैं-

“हमनी के इनदा के निगिचे न जाइलेजा  
पाके में भरी-भरी पि अतानी पानी  
पनही से पिटि-टिपि हाथ गोड़ तुज़ि दैले  
हमनी के इतनी काही के हलकानी”।

---

<sup>१</sup> कंवल भारती, *दलित कविता का संघर्ष*, पृ. ४०. (से उद्धृत)

मतलब यह है कि हम लोग डोम हैं, कुँए के पास नहीं जा सकते। गंदला कीचड़ का पानी हम पीते हैं। जूतों से पीट-पीट वे हमारे पैर तोड़ देते हैं। हम लोगों को इतना यातना क्यों उठानी पड़ती है? जिस- हाड़-माँस का हमारा शरीर बना है उसी का इन ब्राह्मणों का इन ठाकुरों का बना हुआ है तो क्या बात है कि जो ये पूजे जाते हैं, और हमारी पूजा जूतों से होती है।”<sup>१</sup>

हीरा डोम ने इस कविता में भगवान को भी उस रूप में न लेकर अपने भगवान को भी हिन्दू उच्च वर्ग के भगवान से भी अलग कर दिया है। हीरा डोम की कथनी, उसका काव्य, दलित की मर्मन्तक कहानी है, उसका आर्तनाद है, उसका आक्रोश है, उसकी आह है, साथ-साथ उसका विलाप है।

अतः हम कह सकते हैं कि इस कविता का ऐतिहासिक महत्व है। अछूत लोग अपने भगवान को भी अलग करना चाहते हैं। कारण स्पष्ट है उनकी पूजा जूतों से होती है। कीचड़ पानी पीती है। कुँए के पास नहीं जा सकते। इस संदर्भ में आक्रोश है और भगवान को भी अलग करना चाहते हैं। आज भी भारत के कुछ इलाकों में सामाजिक स्थिति भिन्न नहीं है। इसलिए ‘अछूत की शिकायत’ आज भी प्रासंगिक है।

### २.३.४.२ स्वामी अछूतानन्द हरिहर

हीरा डोम के ही समकालीन दूसरे महत्वपूर्ण कवि है स्वामी अछूतानन्द हरिहर। स्वामी जी कवि, लेखक, समाज सुधारक, दलित, शोषित, सर्वहारा समाज के मध्य जन जागरण करने वाले, आदि हिन्दु आन्दोलन के प्रवर्तक थे। स्वामी जी का असली नाम हीरालाल था। वे आर्य समाज की विचार धारा से प्रभावित तथा उसके प्रवर्तक थे। आर्य समाज के प्रवर्तकों ने उन्हें हीरालाल के स्थान पर पण्डित हरिहरानन्द नाम दिया। जब वे १९१७ को आर्य समाज के प्रचार के लिए जाटव बस्ती आगरा में आये थे वहाँ के समाज

---

१ कंवल भारती, *दलित विमर्श की भूमिका*, पृ. १११.

सुधारक सुन्दरलाल सागर के नेतृत्व में 'अखिल भारतीय जाटव महासभा' की स्थापना किया। आर्य समाज तथा जाटव महासभा के प्रचार प्रसार के लिए वे सिरसागंज जिला मैनपुरि में गये थे। वहाँ के जाटव समाज के अछूत बच्चों को शिक्षा देने के लिए पाठशाला खोले। उद्घाटन के समय अछूत बच्चों को ज़मीन पर तथा सवर्ण बच्चों को फर्श पर बिठाने की भेदभाव को देखकर उन्होंने आर्य समाज को छोड़ दिया। इसके बाद उन्होंने दिल्ली में 'अखिल भारतीय अछूत महासभा' की स्थापना की और 'अछूत हिन्दी मासिक पत्रिका' का संपादक बने। तब से स्वामी जी ने अपना नाम स्वामी अछूतानन्द हरिहर रखा। देश के विविध भागों में इस पत्रिका के ज़रिए 'अखिल भारतीय अछूत महासभा' की स्थापना होने लगी। सन् १९२३ में रामदयाल जाटव की अध्यक्षता में 'आदि हिन्दु सम्मेलन' का आयोजन हुआ। सन् १९२८ के अंत में स्वामी जी ने 'आल इण्डिया आदि हिन्दु महासभा' की स्थापना की। स्वामीजी का यह कार्य सिर्फ जाटव को ही नहीं बाकि अछूतों को भी जागृत किया। उन्होंने अछूतों पर हो रहे अन्याय एवं अत्याचार को संगठित होकर सामना किया।

स्वतंत्रता संग्राम के समय दलितों में शिक्षा नहीं के बराबर थी, पर उनमें जागृति आना प्रारम्भ हो गई थी। वे अधिक पढ़े-लिखे न थे, इसलिए आंचलिक गीतों में अपनी भावनाएँ अभिव्यक्त कर रहे थे। अछूतानंद जी ने एक गज़ल में यह फरियाद करते हैं-

“मैं अछूत हूँ, छूत न मुझमें फिर क्यों जग ठुकराता है।

छूने में भी पाप मानता छाया से घबराता है।

मुझे देख नाक रिकोड़ता दूर हटा वह जाता है।

हरिजन भी कहता है मुझको 'हरि' से विलग करता है।”<sup>१</sup>

---

१ डॉ. राजपाल सिंह राज, स्वामी अछूतानन्द हरिहर, पृ.६०

आजकल भारतीय संदर्भ में इस कविता का महत्वपूर्ण स्थान है। अछूतों को छूने तथा देखने में पाप माना गया है। उसे देखते ही दूर हट जाते हैं। जिन्हें हरिजन कहकर बुलाते हैं उन्हें मंदिर में प्रवेश नहीं करने देते। आज के वैज्ञानिक एवं इलक्ट्रॉनिक युग में भी मनुष्य को अपनी मानसिक बदलाव की ज़रूरत है।

अछूतानंद जी की कविताओं के संग्रह का नाम है ‘आदि वंश का डंका’। इस काव्य संग्रह की एक कविता की कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं-

“निसिदिन मनुस्मृति हमको जला रही है।  
ऊपर न उठने देती नीचे गिरा रही है।।  
हमको बिना मजूरी, बैलों के संग जोते  
गाली व मार उस पर हमको दिला रही है।”<sup>१</sup>

मनुस्मृति के सामाजिक नियमों के कारण दलित ओर भी पद-दलित हो रहे हैं। अछूत वर्ग मनुष्य के साथ नहीं बल्कि बैलों के साथ जी रहे हैं। आज भी भारत की कुछ प्रदेशों में इनकी स्थिति बहुत बुरा है। मनुस्मृति पर उनकी कविता में दलित पीड़ा मानवीय संवेदना के रूप में प्रकट होती है। उनके लेखनी का असर उत्तर भारत के कवियों पर पडा होगा।

### २.३.४.३. केवलानंद तथा अन्य कवि

ऐसा माना जाता है कि केवलानंद जैसे कवियों ने इनकी धारा को आगे बढ़ाया। केवलानंद का कुछ कवितांश यहाँ प्रस्तुत है-

“मनुजी तुमने वर्ण बना दिए चार।

---

१ वही, पृ. ६३.

जा दिन तुमने वर्ण बनाए, न्यारेक रंग बनाये क्यों ना।  
 गोरे ब्राह्मण, लाल क्षत्रिय, बनिया पीले बनाये क्यों ना।  
 शूद्र बनाते काले वर्ण के, पीछे को पैर लगवाए क्यों ना  
 कैसे हो पहचान पोप जी दो अक्षर डालवाये क्यों ना।  
 लोहे के बर्तन पर पानी कंचन को दयौ डार।। मनुजी.....”<sup>१</sup>

इस कविता में केवलानंद ने भी मनु के सामाजिक संरचना और वर्णव्यवस्था पर प्रश्न चिन्ह लगाया है। वर्णव्यवस्था को भयानक रूप देने वाला यह गीत आज भी प्रासंगिक है। इनके अतिरिक्त मंगलाप्रसाद विश्वकर्मा की कविता ‘अछूत’ तथा शोभाराम धेनुसेवक की ‘अछूत आवेदन’ हिन्दी साहित्य की पत्रिका ‘चाँद’ के मई १९२७ में प्रकाशित हुई।

#### २.३.४.४ बिहारीलाल हरित

अछूतानन्द और केवलानन्द के बाद का आक्रोश एवं विद्रोही स्वर बिहारीलाल हरित के काव्य में देखने को मिलता है। स्वातंत्र्योत्तर काल से लेकर अस्सी के दशक तक का समय एक तरह से बिहारीलाल हरित और उनके शिष्यों का समय था। दलित समाज के प्रसिद्ध नारा ‘जय भीम’ की सर्जना का श्रेय श्री बिहारीलाल हरित को है। राम की तरह ही बाब अंबेडकर को घर-घर तक पहुँचाने तथा जन मानस को बाबा अंबेडकर के प्रति श्रद्धा से भरने के लिए हरित जी ने ‘भीमायण’ नाम से एक महाकाव्य लिखा। वे दलित स्वाभिमान के कवि थे। उन्होंने ‘हरित साहित्य मंडल’ बनाकर बहुत सारे लोगों को लिखने को प्रेरित किया। उनके लिए डॉ. अंबेडकर देवता और मसीहा बन चुके थे। वे कहते हैं-

१ कंवल भारती, *दलित विमर्श की भूमिका*, पृ. ११३.

“सुनो भारत के नर नारी हम पुजारी बाबा भीम के।  
 कोई पूजे दई देवता कोई पूजे चन्डी।  
 गलिहारे का सय्यद पूजे जाकर के मुसटन्डी।।  
 बूत पूजे दोंगा चारी, पूजारी बाबा भीम के।।  
 भारत की अछूत जाति को अब अपना घर सूझा।  
 भीमराव भारत में अपना सही देवता पूजा।।  
 जिसे पूजे गोर्धन बिहारी, पूजारी बाबा भीम के।।”<sup>१</sup>

इस पंक्तियों से हमें पता चलता है कि अछूतों के बीच अंबेडकरीय विचारधारा का असर बहुत गहराई से जुड़ा हुआ है। आधुनिक संदर्भ में बिहारीलाल जी ने अछूतों के भीतर ‘जय भीम’ का प्रचार प्रसार करते हुए उनमें ऊर्जा प्रधान किया है।

#### २.३.४.५ दलित कविता और गैर दलित

आधुनिक दलित कविता को अपनी पहचान देने में गैर दलितों का योगदान महत्वपूर्ण है। समाज सुधार आन्दोलन तथा राष्ट्रीय स्वतंत्रता आन्दोलन की पृष्ठभूमि में गैर दलित साहित्यकारों का योगदान विशेष रूप से उल्लेखनीय है। हम जानते हैं कि हजारों सालों तक दलित समाज अपनी सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक आदि अभिव्यक्ति से वंचित रहा है। इसका मूल कारण भारत के वर्ण एवं जाति व्यवस्था है। प्राचीन काल से ही चाहे वो समाज में हो या साहित्य में हो, प्रमुख स्थान सवर्णों को ही हैं। इसी कारण से दलित और भी पद दलित होता रहा। क्योंकि उसमें अपना अस्मिता की पहचान नहीं के बराबर है। जब बाबा साहब तथा महात्मा फुले से प्रेरणा पाकर मनुष्य को केंद्र बनाकर वर्णव्यवस्था के विरुद्ध दलित कविता रचा गया तब से दलितों में नई

१ कंवल भारति, *दलित कविता का संघर्ष*, पृ. ९० (से उद्धृत)



चेतना का नीव फूट पड़ा। दलितों में चेतना लाने में दलित आंदोलनों का भी महत्वपूर्ण भूमिका है।

भारतीय समाज में पहली बार दलित अस्मिता की पहचान आधुनिक काल में ही संभव हुआ। देश में अनेक परिवर्तनों के साथ बीसवीं सदी का प्रारंभ हुआ। स्वतंत्रता आंदोलन तथा समाज-सुधार आंदोलन देश के वातावरण को बदलने में अपना-अपना भूमिका निभाई। आर्य समाज तथा गाँधिवाद से प्रभावित होकर अनेक कवियों ने समाज-सुधार तथा अछूतों के प्रति सहानुभूति पूर्ण कविताएं लिखने लगी। राष्ट्रीय संवतंत्रता आन्दोलन के दौरान दलितों के राजनैतिक संघर्ष के परिणामस्वरूप दलित कविता की गाँधीवादी धारा अस्तित्व में आई। जैसे मैथिलीशरण गुप्त की 'अछूत' अयोध्या सिंह उपाध्या हरिऔध की 'छूत-छात के चौपदे', आचार्य रामचन्द्र शुक्ल की 'अछूत की आह' निराला की 'दलित जनों पर करो करुणा' आदि प्रमुख हैं।

कवि मैथिलीशरण गुप्त ऊँच - नीच का भेदभाव छोड़ने के लिए कहते हैं कि-

“अपने चातुर्वर्ण्य विधान/ हे गुण-कर्म -स्वभाव प्रधान।

छोड़ो ऊँच - नीच का दम्भ/ सम है हम सबका आरंभ”।<sup>१</sup>

कवि मानते हैं कि मानव के उन्नति का आधार गुण, कर्म, स्वभाव से ही है। 'भैंसागाडी' नामक कविता में भगवतीचरण वर्मा शोषित, पीड़ित किसान का यथार्थ चित्र अंकित किया है, वे लिखते हैं -

“चाँदी के टुकड़ों को लेने/प्रतिदिन पिसकर, भूखों मरमर

भैंसागाडी पर लदा हुआ/जा रहा चला मानव जर्जर,

है उसे चुकाना सूद कर्ज/ है उसे चुकाना रूपना कर

---

१ मैथिली शरण गुप्त, चातुर्वर्ण्य हिन्दू, पृ. १२०.

जितना खाली है उसका घर/ उतना खाली उसका अन्तर”।<sup>१</sup>

खाली हाथ, खाली पेट से पशु के समान काम करने दलित वर्ग जा रहे हैं। फिर भी उसे उचित वेतन नहीं मिलते हैं। उपर्युक्त कविताएँ दलितों के प्रति जो सहानुभूति है उसे व्यक्त करती है।

इसके बाद सन् १९३६ ई में ‘प्रगतिशील लेखक संघ’ की स्थापना हुई। मुंशी प्रेमचन्द वह पहले साहित्यकार था जिन्होंने यथार्थवाद तथा प्रगतिशील आदर्श भरे साहित्य की रचना की। प्रगतिशील साहित्य के जनवादी धारा ने दलितों के सामाजिक तथा आर्थिक पहलुओं पर कविताएँ लिखी। धूमिल की ‘मोचीराम’ नागार्जुन की ‘हरिजन गाथा’, डॉ. रामविलास शर्मा की ‘कार्यक्षेत्र’ आदि प्रमुख हैं।

दलित की दयनीय दशा का यथार्थ चित्रण नागार्जुन इस प्रकार करते हैं-

“ऊपर देखने हैं बाल्टियों के/ पितरों की प्यास रूहें।

अँगूठा चूसती है नवजात बच्ची

खिड़की से लटका दिया गया है लाल खिलौना”।<sup>२</sup>

इस प्रकार नागार्जुन ने दलितों के प्रति सहानुभूति प्रकट किया है। इस तरह के साहित्य को विद्वानों ने सहानुभूति साहित्य के अन्तर्गत विश्लेषण करने का प्रयास किया है। उनका मानना है कि गैर दलित होने के कारण इनमें स्वानुभूति नहीं के बराबर है। उल्लेखनीय बात यह है कि लेखकों द्वारा पौराणिक साहित्य के मिथक कथापात्रों की पुनर्व्याख्या भी होने लगी। डॉ. रामकुमार वर्मा की ‘एकलव्य’, धनजय अवस्थी की ‘शबरी’ जगदीश गुप्त की ‘शंबूक’ आदि प्रमुख रचनाएँ हैं।

---

१ भगवतीचरण वर्मा, *भैंसागाडी, विस्मृति के फूल*, पृ. ५५.

२ नागार्जुन, *प्यासी पथराई आँखें*, पृ. १८.

जगदीश गुप्त का शंबूक खण्ड काव्य में शंबूक के माध्यम से आज दलितों के साथ होने वाले अन्याय को दर्शाया है। शंबूक राम से कहता है-

“मारते हो और कहते हो उसे उदार  
चलेगा कब तक तुम्हारा यह घृणित व्यापार”<sup>१</sup>

प्रस्तुत पंक्तियाँ पौराणिक कथापात्रों की पुनर्व्याख्या करते हैं।

### २.३.४.६ बाबा साहब अंबेडकर के विचार तथा दलित कविता

आज़ादी के बाद संवैधानिक अधिकारों और जनतांत्रिक मूल्यों तथा लोकतांत्रिक प्रक्रिया के बीच से दलित कविता साहित्य आंदोलन की प्रमुख प्रवृत्ति बनकर उभरी। ठीक उसी समय दलित कविता डॉ. बाबा अम्बेडकर के जीवन-दर्शन और विचारों से प्रेरणा और शक्ति लेकर एक जन आंदोलन बन गयी तथा बाबा अंबेडकर के स्तुति-वन्दना भी करने लगे। इसमें दलित और गैर दलित साहित्यकार भी शामिल थे। जैसे लक्ष्मीनारायण सुधाकर का महाकाव्य ‘भीम सागर’, माता प्रसाद का ‘भीमचरित्र’, रामदास निमेष का ‘भीमकथामृतम्’, बाबुलाल सुमन का महाकाव्य ‘अंबेडकर’ आदि प्रमुख हैं। लक्ष्मीनारायण सुधाकर का ‘भीमसागर’ (१९८५) नामक वृहद काव्य डॉ. बाबा अंबेडकर के जीवनवृत्त पर केंद्रित है। उनकी रचना का एक उदाहरण अग्रलिखित है-

“अंबेडकर का लेख ‘मूकनायक’ में हुआ प्रकाशित था।  
हिन्दु समाज में दलितों का स्थान पूर्ण अभिशापित था।  
बहुमंजिल गुम्बद सम समाज सीढियाँ-द्वार नहीं पाएगा।  
जो जिस मंजिल में जन्मा है वह उसमें ही मर जाएगा।  
ब्राह्मण है, गैर- ब्राह्मण है तीसरा अछूत कहलाता है।

---

१ डॉ. जगदीश गुप्त, शम्बूक, पृ. १३.

उपजाति-जाति में जाति, बिखर वह पात-पात सम जाता है”।।<sup>१</sup>

अतः हम कह सकते हैं कि इसमें मध्यकालीन काव्य परंपरा का प्रभाव दिखाई पड़ता है। समाज में दलितों का अभिशाप पूर्ण जीवन स्थिति की व्याख्या किया है, जो आज के संदर्भ में भी दिखाई देती है। यँ अनेक दलित रचनाकार कविता, नाटक, कथा एवं पत्रकारिता के जरिए स्वयं को अभिव्यक्त करते रहे, किन्तु इस अभिव्यक्ति का स्वर धीमा और सीमित रहा। साठ के दशक में आकर इस स्वर में व्यापकता और तेजी आनी शुरू हुई। डॉ. बाबा अम्बेडकर और बौद्ध धर्म के प्रचार में संलग्न होने वाले और कुछ बाबा अंबेडकर के क्रांतिकारी विचारों की ऊर्जा लेकर उतरे नई पीढ़ी के रचनाकारों ने साहित्य सृजन के क्षेत्र में हस्ताक्षेप करना शुरू किया। लेकिन बाद में बदली हुई परिस्थितियों में दलित कवि डॉ. बाबा अंबेडकर की स्तुति वंदना और प्रचार के महत्व उद्देश्य से विमुख होकर दलित समाज के लोगों की पीड़ा दुःख तथा हज़ारों साल के सामाजिक, आर्थिक उत्पीड़न और शोषण से अपने आक्रोश और विद्रोह को ईमानदारी से अभिव्यक्त करने लगे।

### २.३.४.७ दलित पैंथर तथा दलित कविता

दलित स्वत्व बोध का निर्माण में दलित पैंथर का विशेष स्थान है। दलित पैंथर के सब कार्यकर्ता लेखक थे, जैसे नामदेव ढसाल, अरुण कांबले, रामदास आठवले, ज. वि. पवार, उमाकांत, राजा ढाले, रणदेव आदि ने दलित कविता को नया स्वर दिया। दलित शब्द के प्रचार प्रसार में दलित पैंथर का योगदान महत्वपूर्ण है। वे अपने अनुभूति, अनुभव और अभिव्यक्ति के स्तर पर पूरे लगन से लेखनी चलाई है। पैंथर के अधिकांश मूल कृतियाँ मराठी साहित्य में देखने लायक है। दलितों में आत्मसम्मान, आत्मविश्वास और स्वाभिमान लाने में दलित पैंथर का योगदान प्रमुख है।

---

१ श्री. लक्ष्मीनारायण सुधाकर, *भीमसागर*, पृ. २२.

नामदेव ढसाळ भारतीय समाज व्यवस्था को बदलकर नये समतावादी समाज निर्माण करना चाहते हैं। वे लिखते हैं-

“रक्ताल पेटलेलया अगणित सूर्योनो  
किती दिवस सोसायची ही घोर नाकेबंदी ?  
मरेपर्योत राहयचे का असेय युद्धकैदी  
ती पाहा रे ती पाहा, मातीची अस्मिता अभाळभर झालीय  
माईयाही आत्मयाने झिंदाबादची गर्जना केलिए  
रक्ताल पेटलेलया अगणित सूर्योनो  
आता या शहरा शहराला आग लावीत चला।”<sup>१</sup>

अनुवाद: - “मेरे लहू में (खून में) प्रज्वलित (जन्मे) अगणित सूर्यबिंब

“कितने दिन रहोगे यह घोर बंदीवास।  
कच बने रहोगे इस तरह युद्ध कैदी।  
वह देखो रे देखो मिट्टी की अस्मिता  
आकाश भर में फैल गई। मेरी आत्मा भी  
जिंदाबाद की घोषणा कर बैठी / मेरे रक्त में  
प्रज्वलित अगणित सूर्यो, अब इन /नगरों नगरों को आग लगाते चलो”।<sup>२</sup>

कवि अपनी प्रतिशोध एवं विद्रोही स्वर को मुखरित किया है। दलित वर्ग मिट्टी का संतान है। जब वह अपनी अस्मिता को पहचानते हैं, गुलाम के कैद से स्वतंत्र होने

---

१ नामदेव ढसाळ, गोलापिठा, पृ. १३.

२ विमल थोरात्त, मराठी दलित कविता और साठोत्तरी हिन्दी कविता में सामाजिक और राजनीतिक चेतना, पृ. १००.

लगते हैं तब समाज में क्रांति उत्पन्न होती है। इसी क्रांति के माध्यम से दलित पैंथर समतावादी समाज की स्थापना करना चाहते हैं।

### २.३.४.८ प्रकाशकों की भूमिका

हिन्दी दलित कविता ने एक आन्दोलन का रूप १९८० के बाद से ही लेना शुरू किया। १९८० में 'भारतीय दलित साहित्य मंच' और १९८२ में 'भारतीय दलित साहित्य अकादमी' की स्थापना से हिन्दी में दलित कविता को एक पहचान पाने में मदद मिली। विभिन्न भाषाओं में दलित कविता का सृजन होने लगा। जिससे न केवल स्वयं को स्थापित किया बल्कि परम्परागत साहित्य की जड़ों को हिलाने में भी महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाहन किया। दलित साहित्य के जितने किताबें हैं उसे प्रकाशित करने में प्रकाशन संस्थाओं का महत्वपूर्ण स्थान एवं भूमिका है। १९८० में भारतीय दलित साहित्य मंच द्वारा प्रकाशित 'पीड़ा जो चीख उठी' हिन्दी में दलित कविताओं का पहला संकलन था जिसमें २५ कवियों की कविताएँ संकलित थी। दलित साहित्य प्रकाशन संस्था द्वारा प्रकाशित मंसाराम विद्रोही और कर्मशील भारती की कविताओं का संग्रह 'दलित मंजरी' (१९८२) तथा 'भारतीय दलित साहित्य अकादमी' द्वारा डॉ. बाबा अम्बेडकर जन्म शताब्दि के अवसर पर प्रकाशित सौ दलित कवियों की कविताओं का संग्रह 'अंबेडकर शतक' (१९९०) तथा डॉ.एन. सिंह द्वारा संपादित 'दर्द के दस्तावेज' आदि विशेष उल्लेखनीय है। इसके अलावा गौतम बुक सेन्टर, हिन्दी बुक सेन्टर, वाणी प्रकाशन, राजकमल प्रकाशन आदि संस्थाओं की भूमिका प्रमुख है। १९९० तक आते-आते हिन्दी के दलित कवियों की एक पूरी पीढ़ी तैयार के साथ साहित्य में प्रवेश किया। लगभग दो दर्जन कवि आज रचनात्मक संघर्ष कर रही है।

### १.३.४.९ दलित कविता : वैश्विक परिवेश

दलित कविता की भावभूमि का अध्ययन वैश्विक तथा भारतीय परिवेश के अध्ययन के बिना अधूरा रहेगा। अतः दलित कविता के वैश्विक परिवेश पर प्रकाश डालना संगत लगता है। दलित कविता के वैश्विक संदर्भ में नीग्रो साहित्य का प्रमुख स्थान है। नीग्रो साहित्य और भारतीय दलित साहित्य स्थान एवं काल की दृष्टि से ही भिन्न है। उनके भोगे हुए अनुभव, वेदना, शोषण, साहित्य तथा आंदोलनों की प्रवृत्तियों में समानता है। दोनों का केंद्र मनुष्य है। नीग्रो को आफ्रिकी खंड से जानवरों के जैसे पकड़कर गुलाम बनाते हुए अमेरिका में लाकर बिक्री करते थे। उन्हें कभी संगठित होने न देते। इसके लिए नीग्रो को उनके परिवार से अलग कर बेचता था। नीग्रो ने अपनी वेदना ब्ल्यूज़ (poem) बैलेड, कथा, संगीत, नृत्य आदि के माध्यम से व्यक्त किया था। श्वेत लेखिका स्टेव ने 'अंकल टॉम्स केबिन' नामक उपन्यास लिखा। इसमें नीग्रो के जीवन का मार्मिक चित्रण किया है। इसका अनुवाद कई भाषाओं में हुआ। कई संस्थाओं ने नाटकीय प्रस्तुति भी की। नीग्रो ने 'नीग्रो' शब्द के बदले 'ब्लैक' शब्द को अपनाया। १९०१ में बुकर टी वाशिंगटन की 'अप फ्रॉम स्लेवरी' नामक पुस्तक प्रकाशित हुआ। इसके बाद डब्ल्यू. ई. बी. ड्युबोईस की 'द सोल ऑफ ब्लैक फॉक' नामक पुस्तक भी प्रकाशित हुआ। एक में नीग्रो का परंपरा शरण के भाव है तो दूसरे में समाज के प्रति विद्रोही भूमिका थी। पहला महायुद्ध के बाद नीग्रो के विचारों में नयी चेतना आ गयी। हैर्लेम शहर नीग्रो के आर्थिक एवं सांस्कृतिक केंद्र बन गया। १९२० में 'हार्लेम जागृति आंदोलन' का आरंभ हुआ। लॉगस्टन ह्यूजेस की 'रेशियल हिदम' और जिन ट्यूमर की 'केन' नामक पुस्तकें विद्रोही और स्वाभिमानी चेतना से भरे हुए थे। इसके बाद भी अनेक ब्लैक लेखकों की रचनाएँ आने लगी। अपने जीवन का यथार्थ चित्रण और निषेध का स्वर १९४० के बाद के काले लेखकों के लेखन में देखने को मिलते हैं। १९६६ में नीग्रो युवकों के 'ब्लैक पेंथर' नामक संगठन स्थापित हुआ। नीग्रो लेखकों का कहना है

कि “हमारे अनुभव हमें लिखने के लिए प्रेरित करते हैं।”<sup>१</sup> भारतीय दलित साहित्य के उत्थव की पृष्ठभूमि में वैश्विक स्तर पर ब्लैक साहित्य और नीग्रो संगठन ब्लैक पैथर की प्रेरणा रही है। इस दृष्टि से देखें तो दलित कविता को एक वैश्विक आधार प्रधान करने में ब्लैक साहित्य का विशेष योगदान रहा है।

### २.३.४.१० दलित कविता : भारतीय परिवेश

भारत में दलित कविता का आरंभ दलित आंदोलन के साथ जुड़ा हुआ है। दलित आंदोलन में मराठी भाषा प्रदेश के साथ-साथ मराठी साहित्य का विशेष महत्व है। इसी के प्रभाव से हिन्दी प्रदेश में भी दलित लोग संगठित होने लगे और परिणाम स्वरूप दलित साहित्य का विशेषकर दलित कविता का निर्माण कर आंदोलनों को शक्ति प्रधान करने लगे। हिन्दी के अनेक बोलियों में दलित कविता प्रकाशित होने लगी और हीरा डोम से लेकर अब तक के हिन्दी दलित कविता दलित आंदोलनों को प्रेरित करते रहे हैं। पूरे भारतीय परिवेश के साथ हिन्दी दलित कविता का प्रणयन आधुनिक काल का महत्वपूर्ण घटना है।

भारत के अन्य प्रादेशिक भाषाओं में भी दलित कविता अपनी रचनाएँ प्रकाशित और हिन्दी में अनुवाद करके हिन्दी दलित कविता को आगे बढाने का सफल प्रयास कर रहे हैं। जैसे पंजाबी, मराठी, मलयालम, सिंधी, गुजराती आदि अनेक देश के प्रादेशिक भाषाओं में दलित कविता का प्रचार- प्रसार प्रचुर मात्रा में हो रहे हैं। कुल मिलाकर हम कह सकते हैं कि दलित कविता समता, स्वतंत्रता, बंधुता की स्थापना चाहती है, और टूटे पिछड़े लोगों को उठाना चाहती है। ऐसा कहा जा सकता है कि हीरा डोम से लेकर आज के दलित कवियों के कविताओं का स्वर न्याय का स्वर है। जबकि स्वामी अछूतानन्द तथा बहुत से अन्य कविताओं का स्वर अन्याय के प्रति विद्रोह और अधिकार-चेतना का

---

१. शरणकुमार लिंबाले, *दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र*, पृ. ९५.



स्वर है जो दलित कविता की प्रमुख विशेषता है। दरअसल दलित कवियों की भूमिका सिर्फ वर्ण व्यवस्था और मनुस्मृति के विरोध तक ही सीमित नहीं थी, बल्कि उनका मकसद एक नये विमर्श स्थापित करके मनुष्यता को स्थापित करना है।

#### २.४. दलित कविता की विचारभूमि

पाश्चात्य नवजागरण से प्रभावित होकर बीसवीं सदी के प्रारंभ में जनता में देश भाक्ति एवं राष्ट्रीय भावना का विचार प्रभल होने लगे। हम जानते हैं कि भारतीय समाज वर्ण एवं जाति में बाँटा हुआ है। ब्राह्मणों एवं उच्च जातियों के विरुद्ध निम्न जातियों के संघर्ष आंदोलन का रूप धारण करते आये हैं। जिसके माध्यम से समाज में समता, स्वतंत्रता, बन्धुत्व और सामाजिक न्याय आदि मूल्यों का प्रतिष्ठा कर सकें। इस प्रक्रिया में लोकायती दर्शन यानि 'पथार्थों परमों धर्मः' का वैज्ञानिक आधार देखने को मिलते हैं। नाकि देवता की। उसके बाद महात्मा बुद्ध ने समाज में समता की भावना ले आने का प्रयास किया। महात्मा गौतम बुद्ध, स्वामी अच्छूतानन्द, महात्मा फुले, डॉ. भीमराव बाबा साहब अम्बेडकर, रामस्वामी पेरियार, श्री नारायण गुरु जैसे दार्शनिक नेता तथा सामाजिक सुधारकों के विचारों का महत्वपूर्ण स्थान हैं। जिसके विवेचन किये बिना दलित कविता की विचारभूमि का विश्लेषण पूर्ण नहीं होंगे। भारतीय समाज में पहले समता समानता की कामना भरपूर देखने को मिलता है। बाद में इस व्यवस्था को जानबूझकर उल्ट-फेर कर दिया। सबसे पहले महात्मा बुद्ध ने ही समाज में समता की भावना ले आये थे। इससे प्रेरणा पाकर डॉ. बाबा अंबेडकर के विचारों से ओत प्रोत होकर आज दलित कविता आगे बढ़ रहा है। मार्क्स की क्रान्ति दृष्टि तथा मराठी दलित साहित्य दृष्टि ने भी हिन्दी के दलित विमर्श के कवियों को प्रभावित किया।

अछूतों की अभाव-ग्रस्त एवं दयनीय स्थिति को देखते हुए उनकी सामाजिक, आर्थिक व धार्मिक स्थिति में सुधार लाने तथा हिन्दू समाज व्यवस्था में परिवर्तन करने

हेतु, देश के अनेक भागों में कई समाज सुधार आंदोलन हुए। उत्तरप्रदेश में 'जाटव आंदोलन', महाराष्ट्र में 'महात्मा फुले का आन्दोलन', दक्षिण भारत के केरल में श्री नारायण गुरु के नेतृत्व में 'वैक्कम सत्याग्रह' तथा तमिलनाडु में पेरियार नायकर का 'आत्म-सम्मान सम्बन्धी आंदोलन' आदि प्रमुख रहे हैं। इन आन्दोलनों के मूल में धार्मिक आडंबर तथा सामाजिक कुरीतियों का विरोध ही रहा है। उल्लेखनीय बात यह है कि ये आंदोलन सिर्फ समाज सुधार के लिए रहा है, न कि परिवर्तन के लिए है।

### २.४.१ धर्म और भारतीय समाज

धर्म और भारतीय समाज परस्पर पूरक है। प्रत्येक धर्म की एक सामाजिक व्यवस्था होती है। धर्म हमेशा अन्य समाज के साथ-साथ दलित समाज से भी जुड़ी हुई विषय है। चूँकि दलित हमेशा अन्त्यज रहे हैं। इसलिए धार्मिक क्रम में भी स्वाभाविक रूप से वे अन्त्यज ही है। एक ओर विशेष बात है कि धर्म के बिना दलित जीवन के अस्तित्व को परिभाषित नहीं किया जा सकता। प्रत्येक समाज व्यवस्था के पीछे धार्मिक अनुमति पाई जाती है और उसे देवी प्रदत्त समझा जाता है, क्योंकि धर्म को एक सामाजिक शक्ति माना गया है। भारत में देव-देवताओं के साथ धर्म का सीदा संबन्ध हैं। देव- देवताओं का संबंध विश्वास के साथ है न कि वैज्ञानिक के साथ। धर्म की परिभाषा अनेक विद्वानों ने किया है और ये अनेकार्थी शब्द है। धर्म का सीदा संबन्ध मानव तथा मानवतावादी से होना चाहिए। डॉ. अम्बेडकर ने साफ-साफ बताया है कि “धर्म एक दिव्य प्रशासन की व्यवस्था का समर्थन करता है। वह व्यवस्था समाज के लिए एक अनुकरणीय आदर्श बन जाती है। वह आदर्श इस अर्थ में अस्तित्वहीन हो सकता है कि वह ऐसा कुछ है जिसे सृजित किया गया है। जो यद्यपि अस्तित्वहीन, पर वास्तविक है। आदर्श होने के नाते उसमें पूर्ण क्रियात्मक शक्ति है जो किसी भी आदर्श में अन्तर्निहित होती है। किसी लौकिक आदर्श की तुलना में धार्मिक आदर्शों का अधिक प्रतिष्ठा होती

है, क्यों कि उसके पीछे दैविक मंजूरी होती है। इसका अर्थ है कि किसी धार्मिक आदर्श का मानव जाति पर प्रभाव होता है, चाहे सांसारिक प्राप्ति कुछ भी हो। यह बात किसी विशुद्ध लौकिक आदर्श के बारे में नहीं कही जा सकती।”<sup>१</sup> इस प्रकार डॉ. अम्बेडकर ने धर्म और समाज का अटूट सम्बन्ध स्वीकार किया। बाबा अम्बेडकर ने धर्म को जीवन की आवश्यकता एवं भलाई के लिए माना है। उन्होंने धर्मों को अपने ही मानदण्डों से मूल्यांकित करने का प्रयास किया। उनके राय में धर्म मानव के लिए है, मानव धर्म के लिए नहीं।

आज धर्म को सार्थक बनने के लिए आदमी को प्रेरित करते हुए इन्सान में इन्सानियत पैदा करनी चाहिए। व्यक्ति स्वयं अपने विचारों, मान्यताओं, आदर्शों और रीतियों द्वारा समाज-व्यवस्था का नियमन करता है। परिस्थिति के अनुरूप व्यक्ति स्वयं निर्मित नियमों को तोड़कर नए आदर्शों, विचारों, मान्यताओं, रीतियों, नीतियों को बनाता है। जो धर्म सभी मनुष्यों को समान दृष्टि से देखता है वही सही धर्म है। लेकिन हिन्दू धर्म इन भावनाओं के गुणों को पैदा करने वाली नहीं है। समाज को भिन्न-भिन्न वर्णों में विभाजित करने के पक्ष में रहा है। इस विभाजन के कारण आज करोड़ों दलित विकास की स्थिति में नहीं रहे हैं, हमेशा अन्त्यज रहे हैं।

### २.४.२ वर्ण व्यवस्था तथा मनुस्मृति

भारतीय समाज जातीय दृष्टि से विभाजित समाज है, जिसमें कई प्रकार के अंतर्विरोध विद्यमान है। सबसे अधिक अंतर्विरोध शूद्र या अछूत कहे जानेवाले समुदाय और सवर्ण कहे जानेवाले समुदायों के बीच हैं। हिन्दू धर्म की एक विशेषता है वर्ण-विभाजन। वर्ण व्यक्तियों के एक समूह को कहा जाता है। वर्ण का विभाजन हिन्दू धर्म में कर्म, जन्म एवं जाति के अनुसार किया गया है। सबसे ऊपर ब्राह्मण, फिर क्षत्रिय फिर

१ डॉ. बाबा साहब अंबेडकर, *राइटिंग्स एण्ड स्पीचेस १९८७*, खण्ड ३. पृ. २३.

वैश्य और सबसे नीचे शूद्र है, जिनके बीच किसी प्रकार की बराबरी नहीं है। शूद्र का कर्तव्य इन तीनों वर्णों की सेवा करना है। डॉ. बाबा अम्बेडकर ने वर्ण व्यवस्था को असमानता एवं अन्याय का मूलाधार मानकर वर्णाश्रम धर्म का निषेध किया। उनके अनुसार “वर्ण व्यवस्था जातिवाद एवं छुआछूत की जननी है। जिनके कारण करोड़ों हिन्दू भाइयों को नरकीय जीवन जीना पड़ता है हिन्दू धर्म में वर्ण, जाति एवं छुआछूत ऐसी स्थाई संस्थाएँ बन गई हैं, जो इन्सान और इन्सानियत की घोर शत्रु है”<sup>१</sup>।

मानवीय उत्पत्ति व विकास का मूलभूत आधार समाज है। समाज व्यवस्था सुचारू रूप से चलने तथा हर व्यक्ति अपने कर्म को करते रहे। इसी उद्देश्य को दृष्टि में रखते हुए वैदिक संस्कृति में वर्ण विभाजन की व्यवस्था की सूत्रपात हुआ।

### २.४.२.१ वर्ण

आरंभ में वर्ण का शाब्दिक अर्थ रंग था जिसका मूल रूप से प्रयोग ‘आर्ती और दासों’ के बीच अंतर स्पष्ट करने के लिए होता था। इस संदर्भ में प्रो.धुर्य का मत सर्वमान्य है। उन्होंने अपनी पुस्तक ‘कास्ट एण्ड क्लास इन इंडिया’ में लिखा है, “ऋग्वेद में वर्ण शब्द का प्रयोग किसी वर्ग (ब्राह्मण क्षत्रिय आदि) के लिए कभी नहीं हुआ, वहाँ केवल आर्य वर्ण या आर्य जन का दास वर्ण से अंतर स्पष्ट किया गया है। पहले भारत में वर्ण व्यवस्था नहीं थी इसका प्रमाण यह है कि महाभारत में शांति से पहले भीष्म कहते हैं-

“न तै राज्यम् न राजासीत्र चदण्डोन दण्डिन,

धर्मैव प्रजा सर्वा रसन्तिस्म परस्परम।”<sup>२</sup>

१ डॉ. श्याम सिंह शशि (प्र.सं), बाबा साहब डॉ. अंबेडकर, संपूर्ण वाङ्मय खण्ड- ६

२ प्रो. धुर्य, कास्ट एण्ड क्लास इन इंडिया, पृ.४७

अर्थात् उस युग में न तो राज्य या और न राजा, न दंड-विधान था और न दंड देनेवाला। धर्म के आधार लेकर एक दूसरे की रक्षा करते थे। ऋग्वेद में जो वर्ण शब्द का प्रयोग किया है वहीं शब्द किसी वर्ग के लिए भी प्रयोग नहीं किया जाता था।

प्रो.एम.एन. श्रीनिवास का भी यही मत है। उन्होंने लिखा है कि “एक शब्द जिस का मूलतः प्रयोग विजेता आर्य तथा विजित आदिम जातियों ‘दस्यु’ के बीच रंग रूप में भेद करने के लिए किया गया था, बाद में समाज के श्रेणी क्रमात्मक विभाजन के लिए प्रयुक्त हुआ।”<sup>१</sup> मार्क्सवादी समाज शास्त्रियों के अनुसार वर्ण व्यवस्था श्रम विभाजन का परिणाम है। श्रम का विभाजन उत्पादन शक्तियों के विकास तथा युग की आवश्यकता के फलस्वरूप होता है। इस संदर्भ में डॉ. रामविलास शर्मा के विचारों की चर्चा करना संगत लगता है। उनके अनुसार “वर्णव्यवस्था समाज में श्रम विभाजन का परिणाम है इसलिए उसकी रचना के लिए अनाथों की विजय की कल्पना आवश्यक नहीं है। जिस समाज के सदस्य स्वयं को आर्य कहते थे उसमें द्विज आर्य थे। शूद्र भी आर्य थे।”<sup>२</sup>

हिन्दू धर्म से पूर्व वैदिक धर्म की मान्यता थी जिसमें अनेक देवी-देवताओं को स्वीकार किया गया। अतः वैदिक धर्म बहुदेववाद का पोषक था। वैदिक धर्म की मुख्य विशेषता उसके ‘वर्णाश्रम धर्म’ में निहित है जो संपूर्ण समाज को चार वर्णों में विभाजित करता है। यहीं वर्णाश्रम धर्म मनुस्मृति के पश्चात् ब्राह्मणवाद में बदल गया और यही ब्राह्मणवाद जातिवाद में परिवर्तित हो गया जो हिन्दू धर्म के अभिन्न अंग बने गये हैं जिसका समय-समय पर समाज सुधारकों द्वारा विरोध होता रहा। हिन्दू धर्म को ‘सनातन धर्म’ भी कहा गया है। सनातन का अर्थ जो सदा बना रहे।

---

१ श्रीनिवास एम.एन, *आधुनिक भारत में जातिवाद तथा अन्य निबंध*, पृ.६८

२ शर्मा रामविलास, *मार्क्स और पिछड़े हुए समाज*, पृ.४३

भारत की सामाजिक, सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक परम्परा में 'श्रुति' एवं 'स्मृति' का महत्वपूर्ण स्थान है। स्मृति ग्रन्थों में प्रमुख 'मनुस्मृति' है, जो हिन्दुओं के धार्मिक ग्रन्थ है। यह मनु द्वारा बारह अध्यायों में लिखी गयी रचना है। जिसमें धर्म का लक्ष्य, वर्णव्यवस्था, आश्रम व्यवस्था, न्याय व्यवस्था, राजधर्म आदि अनेक विषयों पर विस्तार से विचार किया गया है। 'मनुस्मृति' के प्रथम अध्याय में मनु वर्णव्यवस्था को इस प्रकार वर्णित करते हैं-

“लोकानान्तु विवृद्धयर्थं मुखाबाहूरूपादतः।

ब्राह्मण क्षत्रियं वैश्यं शूद्रं च निरवर्तयत् ॥”<sup>१</sup> (३१)

जिस प्रकार मनुष्य शरीर के हिस्से गुण कर्म से अलग-अलग है ऐसे ही सारे जगत् में मनुष्य जाति के चार विभाग गुण कर्म से अलग-अलग है। इस प्रकार वैदिक कालीन वर्ण व्यवस्था जो कर्म पर आधारित थी, धीरे-धीरे वर्ण व्यवस्था का स्वरूप लुप्त होता गया तथा समाज में शूद्रों की स्थिति निम्न से निम्नतर होती गयी। इस धार्मिक ग्रन्थ में शूद्रों का जीवन, कर्तव्य, दासता, दण्ड आदि के बारे में सर्व स्वीकृत नियम बनाया है। इसका उदाहरण मनुस्मृति के दशमोऽध्याय में है वह नीचे दिये हैं-

“चण्डालश्चपचानां तु बहिर्ग्रमात्प्रतिश्रयः।

अपपाश्रच कर्तव्यं धनमेषा रवगर्दभम<sup>२</sup> ॥” (५१)

“वासांसि मृतचेलानि भिन्नमाण्डेषु भोजनम्।

कर्षायसमलङ्कारः परिव्रज्या च नित्यश<sup>३</sup> ॥” (५२)

१ प्रवीण प्रलयङ्कर, मनुस्मृति, पृ. ३३.

२ प्रवीण प्रलयङ्कर, मनुस्मृति, पृ.१०९८.

३ वहीं, १०९८.

अर्थात: चण्डाल और श्वपच का निवास गाँव से बाहर होते हैं और यह पात्रों से रहित करना चाहिए। कुत्ते, गंधे इनका धन हैं और वस्त्र मुर्दे के कफन होते हैं। फूटे सकोरे आदि में इनका भोजन कहा गया है और लोहे के अभूषण इनके अलङ्करण होते हैं। श्वपच और चंडालादि से भंगी का भी ग्रहण होता है।

मनुस्मृति के अष्टमोडध्याय में शूद्रों के लिए दण्ड नियम के बारे में बताया है।

“पाणिमुद्यमय दण्ड वा पाणिच्छेदनमर्हति।

पादेन प्रहरूकोपात्पादच्छेदनमर्हति<sup>१</sup>” ॥ (२८०)

अर्थात: यदि शूद्र मारने के निमित्त हाथ अथवा दंड को उठाए तो वह हाथ काटने के दंड योग्य होता है। यदि वह क्रोध से पैर से प्रहार करे तो पैर काटने योग्य होता है।

“सहासनम भिप्रेत्सुरुत्कृष्टस्यापकृष्टजः।

कटयां कृताङ्को निर्वास्यः स्फिचं वास्यावकर्तायेत्<sup>२</sup>” ॥ (२८१)

अर्थात: शूद्र यदि ब्राह्मणादि उत्तम वर्ण के साथ एक आसन पर बैठने की इच्छा करे तो राजा उसकी कमर पर दाग देकर देश से निकाले अथवा उसके चूतड़ को चिन्ह के लिए दाग दे।

“अवनिष्ठिवतो दर्पाद्वावोष्ठौ छेदयेन्नृपः।

अवभुत्रयतो भेद्रवशर्धयता गुदम्<sup>३</sup>” ॥ (२८२)

अर्थात: अभिमान से ब्राह्मणों के ऊपर थूकते हुए शूद्र के दोनों होंठ, पेशाब करते हुए लिंग और अपान वायु करते हुए गुदा को राजा कटवा ले। यह विधान जान बूझकर

---

१ प्रवीण प्रलयङ्कर, मनुस्मृति, पृ. ८५५.

२ वही, पृ. ८५५

३ वही, ८५६

अपराध के विषय में है। वस्तुतः मनुस्मृति ने शूद्रों के लिए अमानुषिक दण्डविधान का नियम बनाकर सामाजिक संरचना में कैद किया है।

मनुस्मृति के दशमोऽध्याय में शूद्र किस तरह अपना जीवन-यापन करना है इसका उदाहरण मिलते हैं।

“वर्णापेतम विज्ञांत नर कलुषयोनिजम्  
आर्थरूपमिवानार्य कर्मभिः सर्वैर्विभावयेत्<sup>१</sup>” ॥ (५७)

अर्थातः जो मनुष्य वर्णों से पतित हो जगत में प्रसिद्ध न हो और सज्जन के समान दीखता हो वस्तुतः दर्जन हो, किसी नीच से पैदा हो उसको निन्दित कर्मों से जान ले।

“शूद्रस्तु वृत्तिमाकाङ्क्षन्क्षत्रमाराधयेद्यदि ।  
धनिनं वाप्युपाराध्य वैश्यं शूद्रो जिजीविषेत्<sup>२</sup>” ॥ (१२१)

अर्थातः ब्राह्मण की सेवा से नहीं जीता हुआ शूद्र यदि जीविका की इच्छा करे तो क्षत्रिय की सेवा करे और क्षत्रिय के न मिलने पर धनी वैश्य की सेवा करके जीवनयापन करें।

“उच्चिष्टमन्नं दातव्यं जीर्णानि वस्त्रानि च ।  
पुलाकाशकराचैव धान्ययानां जीर्णाश्चैव परिच्छादाः<sup>३</sup>” ॥ (१२५)

अर्थातः ब्राह्मण अपने सेवक शूद्र को भोजन से शेष अन्न और फटे पुराने वस्त्रों को तथा अन्न के फटकन और पुरानी चीज़ों को दें।

<sup>१</sup> प्रवीण प्रलयङ्कर, मनुस्मृति, पृ. ११००

<sup>२</sup> वही, पृ. ११३०

<sup>३</sup> वही, पृ. ११३१.



“शक्तेनापि हि शूद्रेण न कार्यो धनसंचयः

शूद्रो हि धनमासाद्य ब्राह्मणानेव बाधते”<sup>१</sup> ॥ (१२९)

अर्थातः धन के संचय में समर्थ शूद्र भी धन के संचय को न करे क्योंकि शूद्र धन को प्राप्त होकर ब्राह्मणों को ही पीड़ा देता है। आशय यह है कि शूद्र कुटुम्ब के पालन पोषण मात्र धन रखें। अधिक धन रखकर शास्त्र का धर्म न जानने से मद के कारण वे उच्च जाति का तिरस्कार करेंगे। छोटी जाति थोड़े धन से ही घमण्डी हो जाते हैं।

“यो लोभादधमो जात्या जीवेदुत्कृष्टकर्मभिः

तं राजा निर्धनं कृत्वा क्षिप्रमेव प्रवासयेत्”<sup>२</sup> ॥ (९६)

अर्थातः यदि जाति से अधम पुरुष लोभवश उत्कृष्ट जाति के कर्मों से आजीविका करता है तो राजा उस मनुष्य को निर्धन करके उसी समय अपने देश से निकाल दें।

वस्तुतः मनुस्मृति ने शूद्रों के जीवन में गुस्कर उसे कठिन नियमों से बँधकर उनसे नाइन्साफ किया है। धर्मों और शास्त्रों भी स्त्रियों की गुलामी को बढ़ाने में एक बड़ी भूमिका निभाई है। मनुस्मृति में कहा गया है-

“नास्ति स्त्रीणां क्रिया मत्रैरिति धर्मो व्यवस्थितिः।

निरिन्द्रिया हयमंत्राशय स्त्राये/नृतमिति स्थिति”<sup>३</sup> ॥ (१८)

अर्थातः धर्मशास्त्र की आज्ञा है कि स्त्री का जाति कर्मादि संस्कार मंत्र विहीन हो, क्योंकि वह अज्ञानी होती है। मंत्र की अनाधिकारिणी होने से उसकी स्थिति मिथ्या ही

---

<sup>१</sup> प्रवीण प्रलयङ्कर, मनुस्मृति, पृ. ११३३

<sup>२</sup> वही, पृ. १११८.

<sup>३</sup> वही, पृ. ९२२

होती है। एक तरफ स्त्री पवित्रता का प्रतीक देवी जैसा चित्रण किया है तो दूसरी तरफ उसे गुलाम बनाकर उसका अस्तित्व ही मिथ्या बताया है।

अतः हम कह सकते हैं कि मनुस्मृति एक धार्मिक ग्रन्थ नहीं है, वह अधार्मिक ग्रन्थ है। साथ में वर्णव्यवस्था के पोषक, असमानता, अमानवीयता, भेद-भाव का जनक एवं संचालक भी है। डॉ. बाबा अंबेडकर ने इस सत्य को समझा और एक साथ वर्णव्यवस्था के विरुद्ध सामाजिक, धार्मिक, आर्थिक एवं राजनीतिक लड़ाइयाँ लड़ी। मनुस्मृति के विषय में बाबा अम्बेडकर कहते हैं कि “भारत को जो अभिशाप है, मनुस्मृति उनमें से एक है और वह अभी भी हमें सता रही हैं। पाँच हज़ार साल बीत गए हैं, लेकिन मनु अभी भी हमें सता रहा है। उसने हिन्दू समाज को चार वर्णों में बाँट दिया-बहुत कुरूप-उसने स्त्री का अवमूल्यन किया। उसने समाज के एक चौथाई हिस्से को मनुष्यता से भी नीचे गिरा दिया। उनको गुलाम बनाया और वह अभी भी जारी है...तो मैं मनुस्मृति के पक्ष में नहीं हूँ। मैं तो सिर्फ यही चाहता हूँ कि मनुस्मृति की सब किताबें जला दी जाएँ और मनु की प्रेतात्मा से हम मुक्त हो जाएँ। उसने हमें बहुत सता लिया।”<sup>१</sup> उन्होंने सन् १९२७ में मनुस्मृति को सार्वजनिक रूप में जला दिया। ये भारत के इतिहास के लिए एक अविस्मरणीय घटना है। साथ में उन्होंने भारतीयों के लिए एक अच्छा व्यवस्थित संविधान भी बनाया।

### २.४.२.२ दलित और जाति

दलितों के समस्त दुःखों के मूल में ज़हर रूपी जाति है। यह भारतीय समाज की सबसे बड़ी सच्चाई है। वर्णाश्रम व्यवस्था से निकली जाति व्यवस्था कालान्तर में जन्म पर आधारित हो गई और अपने को सर्वोच्च मानने वाली ब्राह्मण जाति ने अन्य जातियों के इतिहास को धीरे-धीरे धकेल दिया। भारतीय समाज में जाति एक महत्वपूर्ण अंग है।

---

१ डॉ. बाबा साहब अंबेडकर: *रैटिंग्स एण्ड स्पीचस खंड*. ५, पृ. २८६.

जाति का नाम जानते ही लोगों का व्यवहार और आचरण बदल जाता है। इस जाति के कारण हजारों सालों से दलित समाज शिक्षा से वंचित है। भारत स्वतंत्र होने के बाद, शिक्षा के प्रसार से भारतीय जन जीवन में परिवर्तन हुआ है। समकालीन दलित साहित्य इस शिक्षा की उपज है जिसने दलितों के अन्तनेत्र को खोल दिया था। इसलिए दलित साहित्य शिक्षित दलित वर्ग की अन्तरात्मा की पुकार है, जिसमें आत्ममुक्ति की अनुगूँज है।

दलितों की संवेदना और संग्राम आम आदमी की संवेदना और संग्राम से भिन्न है। उसकी समस्या केवल रोटी की समस्या नहीं है। उसकी अस्ली समस्या वर्ण और जाति को लेकर है। डॉ. अंबेडकर ने मनु और उसकी स्मृति को जाति व्यवस्था का समर्थक माना है। सब से पहले पुरोहितों या ब्राह्मणों का वर्ग बना, बाद में अन्य वर्णों तथा जाति की व्युत्पत्ति शुरू हुई। जिस का फल हिन्दु समाज को ही नहीं बल्कि सारे भारतीय समाज को भोगना पड़ता है। जाति-प्रथा के संबंध में विचार करने से पता चलता है कि उत्पादन और दस्तकारों की विकास के साथ जातियों का भी विकास हुआ। विभिन्न वर्ग के साथ विभिन्न पेशों जो वर्ण पर आधारित हुए। इस प्रकार जातियों का उदय होने के पश्चात लोगों को जातियों के साथ-साथ सामाजिक और आर्थिक पहचान भी होने लगी। समाज में कुछ जातियाँ काम अधिक करती थी। लेकिन आर्थिक रूप से कमजोर थी। क्योंकि वे समाज से बहिष्कृत थे। उन्हें छू तक नहीं सकते थे। उन्हें अस्पृश्य माना गया।

### २.४.२.३ अस्पृश्यता

भारतीय समाज में अस्पृश्य जातियाँ संख्या में अधिक है। चातुर्वर्ण्य व्यवस्था के आधार पर इनका स्थान समाज में हीन और निचले स्तर का रखा। उल्लेखनीय है कि शूद्र से भी नीचे समाज से बहिष्कृत यह जनता है। अछूत प्रथा अल्पमत द्वारा बहुमत पर सामाजिक बुराइयों थोपे जाने का प्रतीक है। अस्पृश्यता दलित समाज के लिए ही नहीं पूरे

भारत देश के साथ-साथ सारे संसार के लिए बुराई है। डॉ. बाबा अम्बेडकर अछूत प्रथा के संबंध में लिखते हैं-

“गरीब होना बुरा है पर इतना नहीं, जितना की अछूत होना  
गरीब स्वाभिमानी हो सकता है किन्तु अछूत नहीं हो सकता  
निम्न होना बुरा है पर इतना नहीं, जितना की अछूत होना  
निम्न व्यक्ति ऊपर उठ सकता है किन्तु अछूत नहीं उठ सकता।”<sup>१</sup>

डॉ. बाबा अम्बेडकर ने अस्पृश्यता की भीतरी परिभाषा इस प्रकार दी हैं-  
“अस्पृश्यता आन्तरिक तिरस्कार की बाहरी अभिव्यक्ति है जो एक हिन्दू किसी निश्चित व्यक्ति के बारे में महसूस करता है।”<sup>२</sup> इस परिभाषा से हिन्दू का व्यवहार नहीं, बल्कि उसकी मानसिकता पकड़ी जाती है। गाँधीजी भी अस्पृश्यता को हिन्दू समाज का कलंक कहा है। उन्हीं के शब्दों में “अस्पृश्यता हिन्दू जाति पर एक लज्जाजनक कलंक है। हिन्दू जाति जब तक, मिटाने में सफल नहीं होती तब तक हिन्दू जाति खतरे में है।”<sup>३</sup> महात्मा गाँधी ने जिन जातियों को ‘हरिजन’ नाम दिया उन्हें अछूत अवर्ण पंचम आदि नामों से बुलाये जाते थे। हिन्दुओं के द्वारा अछूत को छूने से, बात करने से, उनको देखने तथा रास्ते पर चलने से उच्च जाति वाले अपवित्र हो जाते थे। अछूत लोहे के भूषण पहने उन्हें फट पुराने वस्त्र पहनने, तुच्छ भोजन खाने, मजबूर किया गया था। इस तरह मनुस्मृति से जन्म के आधार पर उत्पन्न वर्ण/जाति/अछूतापन दलितों का झंझीर बन गया है। हिन्दू के मन में जाति वैमनस्य बहुत गहरा पड़ा है। इसको मिटाने के लिए

---

१ श्यौराज सिंह बेचैन, डॉ. देवेन्द्र चौबे,(सं) चिंतन की परंपरा और दलित साहित्य, पृ.११५

२ डॉ. धर्मवीर, *दलित चिंतन का विकास-अभिशाप्त चिन्तन से इतिहास चिन्तन की ओर*- पृ.१०४

३ कान्ती मोहन, *प्रेमचंद और अछूत समस्या*, पृ.७.

वर्णव्यवस्था को समाप्त करके समाज में स्वतंत्रता, समता, भाईचारे का नया दीप जलाना होगा।

### २.४.३ लोकायती दर्शन

भारतीय इतिहास और संस्कृति में लोकायती दर्शन का महत्वपूर्ण स्थान है। जिसके संबन्ध में अनेक ग्रन्थ रचे गये लेकिन अब अप्राप्य है। हम जानते हैं कि मनुस्मृति में स्पष्ट रूप से बलपूर्वक कहा गया है कि “पुरोहित अभिजात्य के प्रभुत्व एवं वर्ण पर आधारित सन्स्तरण की पुनस्थापना केवल धार्मिक आदेशों के माध्यम से ही नहीं वरना राजा एवं राज्य के पूरी शक्ति के माध्यम से होनी चाहिए। इस सर्वोचता को स्थापित करने के लिए शास्त्रों के उपयोग की खुली प्रशंसा की गयी। राजा को चाहिए कि वो वर्ण सन्स्तरण का दण्ड की शक्ति के माध्यम से स्थापित करें। अन्य द्विज लोगों को भी इस बात के लिए प्रेरित किया गया कि यदि उनके वर्णगत कर्तव्य के पालन में कोई व्यवधान होता है तो वे शस्त्र उठाएँ”<sup>१</sup> नाट्यशास्त्र के रचनाकार भरतमुनि शास्त्रीय रंगमंच के प्रवर्तक है। लेकिन हमारे लिए विचारणीय विषय ये हैं कि नाट्य कला के उत्भव और विकास के मूल में लौकिक धारणा रही है या धार्मिक या दैविक धारणा। प्रो. अच्युतन जी का मत सही है कि “इस द्वंद के पीछे मूल रूप से दो संस्कृतियों, परंपराओं या विचारधाराओं का संघर्ष हैं।”<sup>२</sup> लोकायती दर्शन लौकिक धारणा के पक्ष में है क्योंकि वे ‘पदार्थ को परमसत्य’ मानते हैं। अनेक विद्वान दैविक धारणा के बदले लौकिक अवधारणा के पक्ष में है। 'The making of theatory history' के लेखक Paul Kuritiz (१९८८) 'The root of theatory' के लेखक Eli Rojik (२००२) आदि विद्वानों का

---

१ Donigr wned and Vrain, K. Smith (Trans. 1912 मनुस्मृति)

२ देशी नाट्य परंपरा और दलितों की सांस्कृतिक अस्मिता, प्रपत्र, Presented by National Seminar, Dept. Hindi, Babasahib Bhimrav Ambedkar University, Aurangabad 2016.

कहना है कि “रंगमंच के उद्भव के एकल दैविक अवधारणा आदिम आदिवासियों के अविकसित रंग मंच के रूपों तथा अन्य तथ्यों के बाद स्वीकार नहीं किया जाना चाहिए।”<sup>१</sup>

अभिव्यक्ति मानव का जन्मजात स्वभाव है। प्रकृति के हर जड़ चेतन वस्तुओं में अभिव्यक्ति है। आदिम मनुष्य के रूप, रंग, रुचि एवं वातावरण के अनुसार उसकी अभिव्यक्ति हुई है। इस अनुकरण का साधन प्रकृति ही है। भावाभिव्यक्ति के लिए उनके पास शब्द या भाषा नहीं थे। अपने शरीर से कई प्रकार के ध्वनियों से भावाभिव्यक्ति कर रहे थे। अभिव्यक्ति के प्रथम चरण के इस अंगसंचालन से आचार्यों ने बाद में नृत्य संबन्धी अवधारणा रूपायित किया। मूलवासियों ने प्रकृति के हर वस्तु में ताल-लय देखा है। इस ताल-लय समन्वय ही प्रकृति को संतुलित बनाये रखा है। यह रहस्य हमारे पूर्वजों ने जान लिया था। हर जीवन में एक ताल और लय है। इस तथ्य को बाद में विभिन्न रीतियों में अभिव्यक्त करता है। जैसे “ताण्डव और लास्य; शिव और शक्ति दोनों प्रकृति में शामिल है। इसके सही अनुपात में बने रहना सृष्टि के लिए अनिवार्य है; सृष्टि का रहस्य है। अतः यह देशी नाट्य परंपरा का मूलाधार बन सकते हैं।”<sup>२</sup> इतना ही नहीं आचार्य बृहस्पति चार पदार्थों के एक निर्दिष्ट सम्मिश्रण से (भूमि, जल, वायु, अग्नि) से जगत के उत्पत्ति की ओर संकेत भी दे रहे हैं। अतः महात्मा गौतम बुद्ध के समता दर्शन के पहले लोकायती दर्शन का यह वैज्ञानिक सिद्धान्त दलित कविता की विचारभूमि के प्रथम चरण के रूप में ले सकते हैं।

---

१ देशी नाट्य परंपरा और दलितों की सांस्कृतिक अस्मिता, प्रपत्र, Presented by National Seminar, Dept. Hindi, Babasahib Bhimrav Ambedkar University, Aurangabad 2016.

२ वही,

### २.४.४ समता दर्शन और गौतम बुद्ध

बौद्ध धर्म भारत का प्राचीन धर्म है। यह भारतीय संस्कृति एवं इतिहास का एक अंग है। इसके संस्थापक महात्मा बुद्ध माने जाते हैं। संसार के दुःखों को किस प्रकार दूर किया जाए यह चिन्ता सिद्धार्थ को निरन्तर सताने लगी। तत्त्वज्ञान अर्थात् बोधि प्राप्त कर लेने के बाद वे बुद्ध की संज्ञा से विभूषित किये गये। इस नाम के अतिरिक्त उन्हें तथागत (जो वस्तुओं के वास्तविक स्वरूप को जानता है) तथा अहेत की संज्ञा से भी सम्बोधित किया गया। संपूर्ण सत्य का ज्ञान प्राप्त हो जाने के बाद महात्मा बुद्ध ने लोक-कल्याण की भावना से प्रेरित होकर अपने सन्देश को जनता तक पहुँचाया। महात्मा बुद्ध के उपदेश के फल-स्वरूप बौद्ध धर्म का सूत्रपात हुआ। बौद्ध धर्म सर्वप्रथम भारत में फैला। उस समय भारत में ब्राह्मण धर्म था। जिसमें बलि-प्रथाओं की प्रधानता थी। इस भयानक वातावरण में बौद्ध धर्म का आविर्भाव हुआ, जो अहिंसा पर आधारित था। नृपों एवं भिक्षुओं की सहायता से दूसरे देशों में भी इसका प्रचार-प्रसार हुआ। इस प्रकार यह धर्म विश्व धर्म के रूप में प्रतिष्ठित हुआ। भगवान बुद्ध ने कहा था-“अप्य दीपो भवः अत्त नाथो भवः”<sup>१</sup> अर्थात् अपने दीपक स्वयं बनो, और अपना स्वामी स्वयं बनो। उन्होंने उन्होंने यह भी कहा-“हे मानव, तू स्वयं अपना कर्ता-धर्ता है, तेरी गति-सुगति अथवा दुर्गति तेरे ही हाथों में है, तू ही उसके लिए जिम्मेदार है।”<sup>२</sup>

महात्मा बुद्ध एक समाज सुधारक और दार्शनिक थी। बुद्ध के अनुसार संसार दुःखों से परिपूर्ण है। दुःख के सम्बन्ध में जितने प्रश्न हैं उनके उत्तर जानने के लिए उन्होंने मानव को प्रेरित किया। अपने जीवन का उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए कहा है- “मैं दुःख

---

१ जयप्रकाश कर्दम (सं), *दलित साहित्य वार्षिकी-२००४*, - पृ.५३

२ वहीं, पृ.५३

और दुःख निरोध पर ही अधिक बल देता हूँ।”<sup>१</sup> बौद्ध धर्म कर्म सिद्धान्त में विश्वास करता है। इस सिद्धान्त के अनुसार मानव का वर्तमान जीवन उसके अतीत जीवन के कर्मों का फल है तथा उसके भविष्य जीवन वर्तमान जीवन के कर्मों का फल होगा। साहित्य की सार्थकता अथवा अर्थवत्ता भी वहीं प्रमाणित होती है जहाँ बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय! के तत्व समाहित हो। बुद्ध धर्म समता एवं बंधुता पर आधारित है तथा जातिभेद व ऊँच-नीच को नहीं मानता। यह मानवतावादी धर्म है। महात्मा बुद्ध ने कहा था- “ऊँचे वर्ग के लोग आसमान से नहीं आते हैं, और न उस वर्ग की कोई विशेष जाति है। जितने प्राणी है, सब एक समान है, सब आपस में भाई-भाई है।”<sup>२</sup> भगवान बुद्ध के धर्म के बारे में डॉ. अम्बेडकर ने कहा कि-“जीवन की पवित्रता, जीवन की पूर्णता, निर्वाण प्राप्ति, तुष्णा का त्याग और कर्म को नैतिक संस्थान मानना ही धर्म है।”<sup>३</sup> बुद्ध धर्म वास्तव में मनुष्य द्वारा मनुष्य के लिए निर्मित धर्म है।

दूसरे धर्मों और बौद्ध धर्म में बड़ा अंतर है। बौद्ध धर्म की महान और मूल आधार की बातें दूसरे धर्मों में नहीं मिलेंगीं। क्योंकि दूसरे धर्म मनुष्य और ईश्वर के गहरे संबंध को बताते हैं। ईश्वर और आत्मा के लिए बौद्ध धर्म में कोई स्थान नहीं है। दुःख से पीड़ित गरीब लोगों का उद्धार करना ही बौद्ध धर्म का मुख्य ध्येय है। भगवान बुद्ध ने कहा कि बौद्ध धर्म “बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय लोकानुकम्पाय आदि कल्याण, मध्य कल्याण पर्यवसान कल्याण अर्थात् बहुत जनों के हित के लिए है और सब लोगों पर अनुकम्पा के लिए है। यह आदि मध्य और अन्त में कल्याणकारक है।”<sup>४</sup>

१ डी. आर. जाटव, *विश्व धर्म और अम्बेडकर*, पृ.१३२

२ राजमल सिंह राज, *अम्बेडकर बनाम सामाजिक परिवर्तन* - पृ.४१

३ माताप्रसाद, *दलित साहित्य दशा और दिशा*, पृ. ६१

४ डी. आर. जाटव, *विश्व धर्म और अम्बेडकर*, पृ.१६८



दलित साहित्य कई दृष्टि से बौद्ध साहित्य से समानता रखता है। क्योंकि दोनों का केंद्र मनुष्य और मानव कल्याण है। एक स्थान पर बुद्ध ने कहा है कि-“मेरे शब्दों को प्रमाण न मानो। तुम्हारी बुद्धि अथवा अनुभव से जो बात जांचती हो उसे ही सत्य मानो। इस विश्व में अंतिम और अपरिवर्तनीय कुछ भी नहीं हैं। परिवर्तन तथा सतत् परिवर्तन ही सत्य है।”<sup>१</sup> अतः बात स्पष्ट है कि बौद्ध धर्म रूढ़ीवादी विचारों को, विश्वासों पर भरोसा रखने वाला नहीं है। वास्तविक विचारों पर ध्यान देने वाली है।

### २.४.५ महात्मा फुले और सावित्री बाई फुले

अस्पृश्यता निवारण और बहुजनसमाज के हित केलिए संपूर्ण जीवन भर कार्य करने वाला व्यक्ति है महात्मा ज्योतिबा फुले । उन्होंने सामाजिक विषमता के खिलाफ संघर्ष करने हेतु ‘सत्यशोधक आन्दोलन’ का नेतृत्व किया। जातिभेद और धर्मभेद की आलोचना करते हुए मानव की समानता का प्रचार किया। उन्होंने ब्राह्मणवाद को नष्ट करने की नीति को अपनाया। उनके सत्यशोधक आन्दोलन का मुख्य कार्य था-सामाजिक विषमता को नष्ट करना, ईश्वर और भक्त के बीच के दलालों को नष्ट करना, शिक्षा के द्वार सभी केलिए खोलना। सन् १८५१ में लड़कियों के लिए और सन् १८५२ में अछूतों के लिये इन्होंने अपनी पत्नी की सहायता से स्कूल खोले, सावित्री बाई फुले वहाँ की अध्यापिका बनी। सन् १८६४ में बालहत्या प्रतिबंधक गृह की स्थापना की जिससे विधवा माँओं के बच्चों को आश्रय मिला। उन्होंने अछूतों केलिए अपने घर का पानी का कुंड खोल दिया जिसके कारण उन्हें समाज और जाति से बहिष्कृत कर दिया गया। वे अनेक कष्टों को झेलकर जीवन के अंत अपने कार्य को पूरा करने हेतु संघर्ष करते रहे। ईश्वर तथा धर्म के नाम पर ब्राह्मण द्वारा आम आदमी को शोषण से बचाने के लिए सन् १८७३ में ‘सार्वजनिक सत्य धर्म’ की स्थापना कर सत्य ही ईश्वर है ऐसा घोषित किया।

---

१ डॉ. दोड्डा शेषु बाबु, *दलित कविता का यथार्थवादी परिदृश्य*, पृ.२२

## २.४.६ डॉ. बाबा साहब भीमराव अम्बेडकर

भारतीय मूल निवासियों की चेतना के प्रतीक पुरुष, बोधिसत्व-भारतरत्न डॉ. भीमराव अम्बेडकर विश्व के उन महापुरुषों में सम्मिलित हैं, जिन्होंने आदमी को आदमी का वास्तविक दर्जा दिलाने के लिए जीवन भर संघर्ष किया। उनका प्रसिद्ध नारा है- 'शिक्षित बनो, संगठित हो और संघर्ष करो'। नागपूर की 'डिप्रस्ट क्लास' की सभा में उन्होंने कहा, "My final words of advise to you is educate, agitate or organize, have faith in yourselves and never lose hope. I shall always with you as I know you will be with me."<sup>१</sup> शिक्षित होने का अर्थ है- अम्बेडकरवादी हो जाना। अम्बेडकरवाद भारत के बहुजनों की वैचारिक अथवा बुद्धिवादी क्रान्ति है। यह श्रमण संस्कृति है तथा यह करुणा, मैत्री, ज्ञान व त्याग पर आधारित है। कठिन संघर्ष से बाबा अम्बेडकर मानवता के मसीहा बने तथा वे करोड़ों दलितों पीड़ितों के पूजनीय बने। बाबा अम्बेडकर प्रेरित दलित साहित्य ने मनुष्य को केंद्र माना है। डॉ. बाबा अम्बेडकर ने भारत के संविधान में सबको समानता का अधिकार देकर इस व्यवस्था को संवैधानिक धरातल पर बदल दिया। लेकिन समाज में यह असमानता आज भी मौजूद है। सवर्णों के मस्तिष्क में 'मनु' आज भी जिन्दा है जो कहता रहता है-

“माङ्गल्यं ब्राह्मणस्य स्यात्क्षत्रियस्य बलान्वितम्।

वैश्यस्य धनसंयुक्तं, शूद्रस्य तु जुगुप्सितम् ॥”<sup>२</sup> (३१)

कि ब्राह्मण का नाम मंगल सूचक शब्द से युक्त, क्षत्रिय का नाम बल सूचक शब्द से वैश्य का नाम धन सूचक शब्द से युक्त तथा शूद्र का नाम घृणित शब्द से युक्त रखा जाना

१ Dr. Baba Saheb Ambedkar, Writing and Speeches, Vol. 3, Education Department, Govt. of Maharashtra, p. 51.

२ प्रवीण प्रलयडकर, मनुस्मृति (दूसरा अध्याय), पृ. १०३

चाहिए। डॉ.अम्बेडकर सामाजिक धरातल पर इसी व्यवस्था में परिवर्तन चाहते थे। वर्ष १९२७ में दलितों की अगुवाई करते हुए उन्होंने सार्वजनिक रूप से मनुस्मृति का बहिष्कार किया। १९४६ में प्यूपिल्स एजुकेशन सोसाइटी बनाकर तमाम स्कूल और कॉलेजों की भरमार कर दी। अम्बेडकर-दर्शन मानवीय संवेदनाओं, समतामूलक समाज की स्थापना, स्वतंत्रता के अधिकार, पारस्परिक बन्धुत्व भाव उत्पन्न करने और वर्ण-व्यवस्था से मुक्त होकर जीवन जीने के सरोकारों का दर्शन है। इसी विचार की प्रेरणा लेकर दलित अपना पहचान कराता है। बाबा साहब ने कहा था- “जो धर्म तुम्हें समानता न दे, बराबर के अधिकार न दे और सम्मान न दे, वह अंधे कुँए के समान है, उससे जितनी जल्दी तुम किनारा करोगे उतनी ही जल्दी तुम मानवता के नज़दीक आओगे।”<sup>१</sup> उन्होंने आज़ाद भारत का संविधान बनाने के लिए अधिक परिश्रम किया। इससे उन्हें ‘संविधान के शिल्पकार’ के रूप में गौरवान्वित किया जाता है। दलित को उनकी अस्मिता का अहसास सही मायनों में डॉ.अम्बेडकर ने कराया। उन्होंने ही उनकी अन्याय और शोषण के खिलाफ संघर्ष करने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने सर्वप्रथम बम्बई में अछूतों की सभा लेकर ‘अन्त्यज’ संघ की स्थापना की। बाद में सन १९२४ में ‘बहिष्कृत हितकारिणी सभा’ की स्थापना की। प्रस्तुत सभा ने शिक्षा के प्रचार-प्रसार को प्रधानता दी थी। उन्होंने समाज में स्त्रियों की रचनात्मक भूमिका को स्वीकार किया और वे स्त्रियों को भी पुरुषों के समान अधिकार देने के पक्ष में थे। डॉ. अम्बेडकर ने अछूतों के बीच शिक्षा के प्रसार का व्यापक प्रयत्न किया। दलित विद्यार्थियों की शिक्षा के लिए अलग से विद्यालय तथा छात्रावास कायम किए। उन्होंने दलितों की स्थिति सुधारने तथा समाज में जागरूकता स्थापित करने के लिए तीन राजनीतिक दल बनाए- इंडिपेंडेड लेबर

---

१ राजमल सिंह राज, *अम्बेडकर बनाम सामाजिक परिवर्तन*, पृ.६

पार्टी-१९३६, आल इंडिया पार्टी आफ इंडिया-१९४२, रिपब्लिकन पार्टी आफ इंडिया-१९५६।

डॉ. बाबा साहब अम्बेडकर के जीवन का सर्वप्रथम लक्ष्य सामाजिक क्रांति लाना था। वे वर्ण और जाति-प्रणाली को तोड़कर ऐसी व्यवस्था की स्थापना करना चाहते थे, जिससे प्रत्येक व्यक्ति को अपने विकास का पूरा अवसर मिले। इसके लिए उन्होंने लोकतांत्रिक समाजवाद का रास्ता अपनाया। उन्होंने कहा कि उदासीनता किसी समाज को लगनेवाली सबसे बुरी बीमारी है। इसलिए प्रत्येक व्यक्ति चेतनायुक्त होना चाहिए। वह एक नवीन समाज की स्थापना करना चाहते थे। डॉ.अम्बेडकर के अनुसार, ‘आदर्श समाज वह होगा, जो स्वतंत्रता, समता, एवं भातृत्व पर आधारित है।’<sup>१</sup> डॉ.अम्बेडकर अपनी आदर्श-समाज-व्यवस्था में निजी संपत्ति के अधिकार को मान्यता देते थे। देश के कानून मंत्री के रूप में हिन्दू कोड बिल का प्रारूप बनाने में इनका अमूल्य व प्रमुख योगदान रहा है। बाबा अम्बेडकर कहते हैं कि- ‘दूसरों के भरोसे मत बैठो हमें अपने लिए स्वयं ही लड़ना है। हमें अपनी ही शक्ति पर भरोसा करना है और यह संभव है कि हम इस ऊँच-नीच की खाई को खत्म कर देंगे।’<sup>२</sup> डॉ.अम्बेडकर दलितों की शिक्षा के लिए शिक्षण संस्थाएँ भी खोली जिन्में सिद्धार्थ कॉलेज बम्बई १९४६ मिलिन्द कॉलेज औरंगाबाद सिद्धार्थ कालेज आफ लो बम्बई १९५६ आदि थे। १९२० में उन्होंने मराठी भाषा में ‘मूकनायक’ साप्ताहिक शुरू किया था। १९२७ में ‘बहिष्कृत भारत’, १९३० में ‘समता में जनता’ और प्रबुद्ध भारत समाचार पत्र निकाले। दलितों के अधिकारों हेतु सन १९२४ में बहिष्कृत हितकारिणी सभा तथा १९२६ में समता सैनिक दल की स्थापना की। १९२५ में मलवाणा गाँव जिला रत्नागिरि महाराष्ट्र में बाम्बे प्रान्तीय अस्पृश्यता परिषद का

---

१ डॉ. बाबा अम्बेडकर, *लाइफ एंड मिशन*, पृ.४५६

२ मोहनदास नैमिशराय (सं) बयान, दिसंबर २०१०, पृ.१८

पहला अधिवेशन डॉ. बाबा अम्बेडकर की अध्यक्षता में हुआ। इस अधिवेशन में सार्वजनिक कुँओं व मंदिरों में प्रवेश व पानी लेने के लिए अभियान की घोषणा की गई। सन १९२७ में असमानता व अस्पृश्यता की प्रतीक मनुस्मृति का सार्वजनिक दहन किया।

डॉ. बाबा साहब अम्बेडकर ने लन्दन में आयोजित प्रथम गोलमेज सम्मेलन १९३० तथा द्वितीय गोल मेज़ सम्मेलन १९३९ में अंग्रेज़ी हुकुमत से अछूतों के लिए पृथक निर्वाचन तथा भारत के पूर्ण स्वराज्य की मांग की। ब्रिटिश सरकार ने इस माँग को मानते हुए कम्युनल अवार्डस की घोषणा करके अछूतों के लिए पृथक निर्वाचन तथा दो वोट का अधिकार दिया। जिससे वे एक वोट से अपना अछूत तथा दूसरे वोट से सवर्ण प्रतिनिधि चुन सकते थे। गाँधिजी ने इसे हिन्दू समाज का विघटन मानकर इसके खिलाफ पूना की यरवदा जेल में आमरण अनशन शुरू कर दिया। उसके बाद अम्बेडकर ने १९३२ में पूना पैकैट के माध्यम से समझौता कर लिया तथा अंग्रेज़ों द्वारा दी गई सहूलियतों को छोड़ दिया। पूना पैकैट के अनुसार शिक्षण तथा सरकारी सेवाओं में आबादी के हिसाब से आरक्षण तथा अछूतों के लिए विधान सभाओं में १४८ सीटें आरक्षित की गईं।

डॉ. बाबा साहब अम्बेडकर का सपना एक सुदृढ़, समुन्नत और सुखी-सम्पन्न राष्ट्र और समाज की सपना थी। इसके लिए उन्होंने जाति विहीन और वर्ग विहीन समाज की स्थापना की परिकल्पना की। उन्होंने ऐसे धर्म का चयन किया जो अनीश्वरवादी होते हुए भी शुभत्व, नैतिकता करुणा, समानता, मैत्री जैसे सदगुणों से ओतप्रोत था। यही मानवतावादी दर्शन उनके धर्मान्तरण की दिशा का मूलाधार बना। डॉ. बाबा अम्बेडकर ने स्पष्ट कहा कि आदमी को न केवल भूख मिटाने के लिए रोटी चाहिए, अपितु मानसिक संतुष्टि के लिए अच्छे विचार भी आवश्यक हैं। एक दार्शनिक तथा युगदृष्टा होने के नाते डॉ. अम्बेडकर ने आम आदमी की चिन्तन प्रक्रिया को सुदृढ़ किया ताकि एक नया वातावरण बने। उन्होंने १९५६ में येकला नासिक की आत्मसभा में अपने ९० लाख

अनुयायियों के साथ बौद्ध धर्म ग्रहण कर लिया। धर्मांतरण संपन्न होने पर स्वयं बाबासाहब ने कहा था-“विषमता और तानाशाही पर आधारित परंपरागत धर्म का त्याग करने से मेरे पुनर्जन्म हुआ है तथा मुझे नर्क से मुक्त होने जैसा लगा रहा है।”<sup>१</sup> बाबा साहब अम्बेडकर बौद्ध धर्म को स्वीकार करने का एक कारण यह है कि भारतीय समाज के इतिहास में बौद्ध धर्म और दर्शन ने जिस दृढ़ता और गम्भीरता से जाति व्यवस्था का विरोध किया था वैसा किसी अन्य धर्म में दिखाई नहीं देता। डॉ. अम्बेडकर ने अपने मन में जिस धर्म की अवधारणा को संजोया और परिलक्षित किया वह भगवान बुद्ध के धर्म में निहित है। उसकी समाज व्यवस्था हिन्दु, वर्ण, जाति और छुआछूत से भिन्न, समतावादी है।

### २.४.७ महात्मा गाँधी

महात्मा गाँधी ने अस्पृश्यता निर्मूलन कार्य को महत्वपूर्ण मानकर सन १९३२ में ‘हरिजन सेवक संघ’ की स्थापना की। सवर्ण लोगों के हृदय परिवर्तन के लिए वे प्रयासरत थे। उन्होंने अस्पृश्यों को भगवान का रूप मानकर ‘हरिजन’ नाम दे दिया। गाँधीजी ने अस्पृश्यता को हिन्दू धर्म पर लगी कालिख कहा था। जिसे मिटाना हर हिन्दू का कर्तव्य समझते थे। गाँधीजी ने हरिजन सेवक संघ तथा हरिजन साप्ताहिक को चलाया। उनके अनुसार समाज में स्त्री और पुरुष के अधिकार समान हैं। वे बाल-विवाह के विरोधी और विधवा पुनर्विवाह का समर्थक थे। डॉ. बलवत साधु जाधव उनके अछूतोद्धार कार्य के संबंध में लिखते हैं-“महात्मा गाँधी की अस्पृश्यता उद्धार की नीति में वे तेवर नहीं दिखाई देते जो डॉ. अम्बेडकर के विचारों में कृतियों में दिखाई देते हैं। वस्तुतः गाँधीजी वर्णव्यवस्था के समर्थक थे। उन्होंने सनातन हिन्दुओं पर कड़े प्रहार कभी

---

१ जयप्रकाश कर्दम,(सं) दलित साहित्य वार्षिकी- २००९-१०, पृ.१८

नहीं किये ना ही प्रचलित कुरीतियों की तीव्र आलोचना की।”<sup>१</sup> वे सामजस्य की भूमिका अपनाए हुए थे।

महात्मा गाँधीजी दलितों का उद्धार भारतीय जाति व्यवस्था और वर्ण-व्यवस्था को कायम रखते हुए ही करना चाहते थे। वे जाति व्यवस्था को कायम रखते हुए छुआछूत को भी दूर करना चाहते थे। अतः बाबा अंबेडकर आदि दलित नेताओं ने महात्मा गाँधी के दलितोद्धार के कार्यक्रम का विरोध किया। गाँधीजी के दलित जागरण से दलित चेतना को एक सकारात्मक दिशा मिली। उनका विचार था कि पहले राजनैतिक आज़ादी की ज़रूरत है बाद में दलितों को सामाजिक आज़ादी दे दी जाएगी, जब कि डॉ. अम्बेडकर का कहना था कि यदि सामाजिक आज़ादी दे दी जाती है तो राजनैतिक आज़ादी अपने आप मिल जाएगी। गाँधीजी वर्ण को जन्मना मान कर अपने इस तर्क को अधिक स्पष्ट करते हुए कहते हैं - “मेरा वर्ण-भेद का मानना सृष्टि के नियमों का समर्थन करता है। हम अपने माता-पिता के कुछ गुण-दोष जन्म से ही विरासत में प्राप्त करते हैं। मनुष्य योनि में मनुष्य ही पैदा होते हैं, इसे जन्मानुसार वर्ण का ही सूचक समझिए। हम जन्मतः प्राप्त गुण-दोषों में थोड़ा-बहुत परिवर्तन कर सकते हैं, इस दृष्टि से कर्म को भी स्थान है। एक ही जन्म में पूर्वजन्म में अर्जित संस्कारों को सर्वथा मिटा देना शक्य नहीं है। इस अनुभव को देखते हुए तो जो जन्म से ब्राह्मण है उसे ब्राह्मण मानने में ही सब प्रकार से लाभ है। विपरीत कर्म करने से ब्राह्मण इसी जन्म में शूद्र बन जाए ओर संसार उसे फिर भी ब्राह्मण मानता जाए तो इससे संसार की कोई हानि नहीं।”<sup>२</sup> गाँधीजी ने अस्पृश्यता को जाति संघर्ष की चीज़ न मानकर केवल ज्ञान से समाप्त होने वाली चीज़ माना है। अस्पृश्यता को उन्होंने अपराध नहीं माना बल्कि अंधविश्वास माना है।

---

१ डॉ. संजय मुनेश्वर, *हिन्दी का दलित आत्मकथा साहित्य*, पृ.६७

२ डॉ. भीमराव अंबेडकर, *अछूत कौन और कैसे-* पृ.२०७

### २.४.८ कार्ल मार्क्स

मार्क्सवाद 'द्विधात्मक विकासवाद' और 'ऐतिहासिक भौतिकवाद' पर आधारित है। मार्क्स के अनुसार आज तक का इतिहास वर्ग-संघर्ष का इतिहास है और ये वर्ग उत्पादन संबंधों के कारण निर्मित होते हैं। कार्ल मार्क्स ने अतिरिक्त मूल्यों का सिद्धांत रखकर, पूँजीवाद में मज़दूरों का शोषण कैसे होता है, यह सिद्ध किया। शोषण मुक्त वर्गहीन समाज का निर्माण करना मार्क्सवाद का लक्ष्य है। कार्ल मार्क्स ने वर्ग संघर्ष द्वारा श्रमिक वर्ग की आर्थिक शोषण से मुक्ति का आह्वान किया। लेकिन डॉ. बाबा अम्बेडकर ने माना कि दलितों को प्रथम सामाजिक दासता से मुक्त करने से ही आर्थिक शोषण की प्रक्रिया खत्म हो जाएगी। भारतीय समाज व्यवस्था में अमूलचूल परिवर्तन के लिए वर्ण संघर्ष ही अनिवार्य है। दलित साहित्य और मार्क्सवादी साहित्य दोनों अनेक बातों में साम्य दिखाई देता है। आर्थिक विषमता नष्ट करने के लिए मार्क्सवादी लेखक शोषण आधारित पूँजीवाद को नष्ट करना चाहता है। सामाजिक विषमता नष्ट करने के लिए दलित लेखक वर्णव्यवस्था को मिटाना चाहता है। मार्क्सवादी लेखक मनुष्य के शोषण मुक्त को और दलित लेखक मनुष्य के तुच्छता मुक्त को प्रमुखता देते हैं। मनुष्य को मनुष्य के रूप में जीना चाहिए। इन दोनों साहित्य मानव केन्द्रित है। दोनों साहित्य जीवनवादी और यथार्थवादी है।

मार्क्सवाद मानव मुक्ति, नारी मुक्ति, सामाजिक प्रगति, सामूहिक चेतना, मानव लोक कल्याण की भावना आदि के लिए संघर्ष करते हैं। मार्क्स श्रमिकों, शोषितों, मज़दूरों के मसीहा है तो बाबा साहब दलितों, उपेक्षितों, अछूतों, सर्वहारा के प्रेरणा स्रोत है। दलित साहित्य की मूल चिन्ता मनुवाद का विरोध करते हुए असमानता और अस्पृश्यता का अन्त करना है। मार्क्स भारतीय वर्ण-व्यवस्था को भी वर्ग-व्यवस्था के अन्तर ही देखा है। उनके चिन्तन में और व्यवहार में भी आर्थिक वर्ग तो बदल जाते हैं, अर्थात् धनी



व्यक्ति गरीब बन सकता है और गरीब व्यक्ति धनी। किन्तु भारतीय वर्ण और जाति-व्यवस्था अपरिवर्तनीय हैं। मार्क्सवाद ने भारतीय समाज की इस सच्चाई को नहीं समझा था। फिर भी कई कारण से दलित साहित्य और मार्क्सवादी साहित्य में समानता है।

### २.४.९ श्री नारायण गुरु स्वामी तथा अन्य

आधुनिक युग के जिन महापुरुषों ने भारत की दलित-पीड़ित जनता को ऊपर उठाया उनमें श्री नारायण गुरु का नाम अग्रणीय है। उन्हें केरल के नवजागरण के अग्रदूत कहा जाता है। वे समाजसुधारक ही नहीं, बल्कि दर्शन, साहित्य, धर्मप्रचार आदि विभिन्न क्षेत्रों में भी उनकी देन है। नारायण गुरु ने 'इढ़वा' जातियों के उद्धार के लिए आंदोलन चलाया। केरल में सबसे बुरी स्थिति इढ़वा, थिया, चौवन, थडन आदि शूद्र और अछूत जातियों के थे। उन्होंने १९२१ में अपने जन्मदिन से ही शराबबन्दी के लिए आंदोलन चलाया और अपने जन्म-दिन को 'मद्य-निषेध दिवस' के नाम से घोषित किया। श्री नारायण गुरु मानवता के उपासक थे। उनका 'एक जाति, एक धर्म और एक ही ईश्वर' का सिद्धान्त केरलियों को बहुत प्रभावित किया। उन्होंने १९२४ में केरल के 'अलवये' नामक स्थान में 'सर्वधर्म सम्मेलन' करवाया जिनमें सभी धर्मों के विद्वानों ने भाग लिया। वैकम् स्थित शिव मन्दिर दलित और अछूतों के लिए बन्द था। उन्होंने इसके खिलाफ 'वैकम सत्याग्रह' चलाया। गुरु जी ने दलित-उत्थान, किसान-मजदूरों की आर्थिक दशा सुधारने के कार्यक्रमों, नारी शिक्षा, और प्रौढ़ शिक्षा पर ज़ोर दिया। उन्होंने अपना संस्था 'एस. एन. डी. पी. योगम' के ज़रिए अनेक स्कूल और पुस्तकालयों की स्थापना की। गुरु जी ने मिश्रभोजन और मिश्रविवाह का संकल्प लिया। इस तरह गुरु जी ने समाज में एकता, मानवता, समानता का संदेश फैलाकर मानव जाति को एक सूत्र में बाँधने का प्रयास किया।

भारत में 'आत्मसम्मान आन्दोलन' के जनक ई.वी रामस्वामी पेरियार नायकर को दक्षिण-पूर्व एशिया का सुकरात और दक्षिण भारत का भाग्यविधाता कहा गया है। पेरियार का आत्मसम्मान आन्दोलन १९२५ से शुरू होता है, जो अगले ४०-४५ वर्षों तक लगातार चलता रहा। उन्होंने 'वैकम सत्याग्रह' में शामिल होकर लम्बे संघर्ष के बाद केरल के 'वैकम मन्दिर' का मार्ग अछूतों के लिए खोल दिया। इसलिए पेरियार को 'वैकम वीर' भी कहा जाता है। १९४४ में पेरियार और उनके साथियों द्वारा 'द्रविड़ कड़गम पार्टी' की स्थापना की, जो बाद में 'द्रविड़ कड़गम' और फिर 'द्रविड़ मुनेत्र कड़गम' हो गई। इस पार्टी का उद्देश्य ब्रिटीश सरकार से पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त करना और स्वतन्त्र द्रविड़ राज्य की स्थापना था। पेरियार की दृष्टि विश्वव्यापी थी। इनकी प्रतिबद्धता देश की दलित-पिछड़ी जनता और स्त्रियों के प्रति थी। उनकी समस्या के लिए वे जीवन भर लड़ते रहे। उनका झुकाव बौद्ध दर्शन की ओर था। अपने इरोड नगर में अन्तर्राष्ट्रीय बौद्ध सम्मेलन करवाया। बाबा साहब ने तो बौद्ध धर्म धारण ही कर लिया था। किन्तु पेरियार से जब धर्मान्तरण के लिए पूछा गया, तो उन्होंने साफ इनकार करते हुए कहा था कि हिन्दू धर्म में रहते हुए ही वे उसकी विसंगतियों को दूर करना चाहते हैं।

दलित कविता के विचार पक्ष को अपने-अपने ढंग से उपर्युक्त विद्वानों एवं आचार्यों ने स्पष्ट कर दिया, उल्लेखनीय है कि यहाँ कविता समाज के कुरीतियों तथा अत्याचारों को दूर करने के लिए एक सामाजिक एवं साहित्यिक आन्दोलन का रूप धारण कर रहा था। आधुनिक दलित आंदोलन को इसके एक परिणाम के रूप में देख सकते हैं।

## २.४.१० दलित आन्दोलन

दलित आन्दोलन बुनियादी रूप में एक व्यापक सामाजिक और सांस्कृतिक आन्दोलन की अभिव्यक्ति है। अन्य प्रान्तों की तरह हिन्दी जगत में भी ये आंदोलन अपना जगह बना लिया है। दलित आंदोलन; भारतीय समाज को दलितों की दृष्टि से देखने, समझने और व्याख्या करने के साथ-साथ दलितों की पीड़ा, बेचैनी, पराधीनता के यथार्थ को प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति दे रहे हैं। दलित कौन है? समाज में अन्य जनों के साथ इसका संबंध क्या है? उसकी अस्मिता क्या है? अस्पृश्यता को कौन दूर करें? आदि बहुत से प्रश्नों को लेकर ये आंदोलन समाज में अपनी ऊर्जा का समीकरण कर रहे थे। यह तथ्य भी उल्लेखनीय है कि भारत में अकेला एक आंदोलन नहीं हुआ बल्कि अनेक प्रांतों में तरह तरह के आंदोलन हुई थी। इसके संबंध में घनश्याम शाह का मत उल्लेखनीय है।<sup>१</sup>

देश के इन्हीं दलित आंदोलनों को एक जुट होकर आगे बढ़ने के लिए वैचारिक आधार प्रदान करने का कार्य प्रमुख रूप से डॉ. बाबा साहब अंबेडकर ने ही किया था। उन्होंने कई आंदोलनों की शुरुआत की जैसे नारी मुक्ति आन्दोलन, मंदिर प्रवेश आन्दोलन, चोदार सरोवर से पानी पीने का आन्दोलन, बेकार पडी भूमि पर कब्जा कर उत्पादन बढ़ाने का आंदोलन, बेगार प्रथा को समाप्त करने का आंदोलन, महिला प्रसूति सुविधा आंदोलन, मलाबार की वन्य जाति सुधार आंदोलन आदि । एक ओर तो इन आंदोलनों ने शूद्र और दलित समाज को आत्म सम्मान और गौरव दिया। साथ में

---

१ Ganashyam Shah, *Dalit identity and politics*, (ed.) "There has not been a single, unified Dalit movement in the country, now or in the past. Different movements have highlighted. Different issues related to dalits, around different ideologies. However, all of them, overtly or covertly assert a dalit identity, though its meaning is not identical and precies for everone. Identity is concerned with the selfesteem and self-image of a community real or imaginary-dealing with the existence and role: 'Who are we?' 'What position do we have in society vi-a vis other communities?' 'Who are related to others?' Not with standing differences in the nature of dalit movements and the meaning of identity, there has been a common quest- the quest for equality, self-dignity and eradication of untouchability", p. 195.

अतीत के इतिहास को खोजने और समझने के लिए मजबूर कर दिया। बाबा साहब के सबसे बड़ा योगदान वैचारिक और भौतिक क्षेत्र में है। सामाजिक परिवर्तन के लिए समानता के दर्शन को वैचारिक आधार सबसे पहले उन्होंने ही प्रस्तुत किया।

भारतीय समाजिक व्यवस्था में सुधार लाने के लिए पिछली शताब्दि के उत्तरार्ध में देश के अनेक भागों में अनेक नेताओं ने 'समाज सुधार' आन्दोलन किये थे। उन्नीसवीं सदी में हिन्दू समाज सुधारकों ने हिन्दू धर्म में समाज सुधार लाने का सफल प्रयास किया। १८२९ में राजाराम मोहन राय ने 'ब्रह्म समाज' की स्थापना की। इसका उद्देश्य हिन्दू धर्म को स्वच्छ बनाना और एकेश्वरवाद की शिक्षा देना था। १८७५ में उत्तर भारत में स्वामी दयानन्द ने 'आर्य समाज' की स्थापना की। आर्य समाज के जनता में आत्म सम्मान तथा स्वावलम्बन की भावना जगाई जिससे राष्ट्रवाद को बढ़ावा मिला। इसका एक उद्देश्य हिन्दुओं को धर्म परिवर्तन से रोकना भी था। धर्म परिवर्तन कर चुके हिन्दुओं को वापस लाने के लिए आर्य समाज ने 'शुद्धि आंदोलन' चलाया। भारत में अनेक समाज-सुधारक ने धर्म सुधार और समाज सुधार आंदोलन चलाया। सभी ने समाजिक सुधार चाहता था, सामाजिक परिवर्तन या क्रांति नहीं। जब महात्मा फुले और बाबा अंबेडकर ने ही समाज सुधार के स्थान पर सामाजिक परिवर्तन या क्रांति के लिए प्रयास किया और हिन्दू धर्म में व्याप्त वर्णव्यवस्था को जड़ से मिटाने का भरसक प्रयास किया।

इसी पृष्ठभूमि में भारतीय स्वतंत्रता संग्राम को दलित दृष्टि से देखने की आवश्यकता महसूस होती है। क्योंकि इस अवसर पर जितने भी आंदोलन समाज के निचले वर्ग और दलितों के नेतृत्व में हुआ इसका सही दृष्टि से मूल्यांकन नहीं हुआ है या मुख्यधारा इतिहास और साहित्य से ये वंचित रहे। ऐतिहासिक दृष्टि से देखें तो इन्हीं आंदोलनों को लेकर अलग से समाजशास्त्रीय अध्ययन करने की ज़रूरत है। भारतीय संदर्भ में इस तरह के आंदोलनों का क्रमबद्ध विवेचन प्रस्तुत किया गया है। जैसे- बंगाल के नरभस और बरबस क्षेत्र के जन जातियों का 'चुआर विद्रोह' (१७६८- १८३२), बिहार

में तिलका मांझी के नेतृत्व में 'दामिन विद्रोह' (१७६८), गोली मांझी के नेतृत्व में 'पंचेट विद्रोह' (१७८९-९०), 'दीनापुर का विद्रोह' (१७८३), राँची में 'तमाड विद्रोह' (१७८९), छोटा नागपुर में 'कोल विद्रोह' (१८१८), गुजरात में 'भीलों का विद्रोह' (१८१८), छोटा नागपुर क्षेत्र में 'होस जन जातियों का विद्रोह' (१८२०), छत्तीसगढ़ में संत गुरुघासी दास की प्रेरणा से हुई 'सातनामी आन्दोलन' (१८२० - ३०), केरल में १८५९ में वस्त्र पहने की अनुमति के लिए हुई 'चात्रार आन्दोलन' (१८२८), तिरुत सिंह और बार माल्लिक के नेतृत्व में हुई 'असम और मेघालय के खासी जन जातियों का विद्रोह' (१८२९- ३२), सिंहराय और विन्दराय के नेतृत्व में 'झारखण्ड के मुण्डा और उरावों का विद्रोह' (१८३२), गुजरात का 'नायक विद्रोह' (१८४२), महाराष्ट्र का 'कोली विद्रोह' (१८४६) खोण्डमल क्षेत्र में 'उड़ीसा के खोण्ड जन जातियों का विद्रोह' (१८४६ - ४८- ५५), महात्मा फुले के नेतृत्व में 'सत्य शोधक समाज' (१८४८ में पहला स्त्री स्कूल, १८६० में पहला विधवा विवाह), बड़ौदा के महाराज सयाजीराव गायकवाड- अछूतों के लिए स्कूल खोला 'मुसलमान अध्यापक' (१८५३), सिद्ध कमन्हु - नीलाभ्वर- पिताम्बर, गोची माची बिरसा मुण्ड आदि के नेतृत्व में 'झारखण्ड के संथालों का विद्रोह' (१८५५), केरल में श्रीनारायण गुरु के नेतृत्व में 'ईष्रवा शिवलिंग प्रतिष्ठा' (१८५८), छत्रपति शाहु महाराणा के नेतृत्व में शिक्षा अनिवार्य बनाया (१८७०), नागालैंड में नागाओं का विद्रोह (१८८२), रत्नगिरी का गोपालबाबा बलंग के नेतृत्व में 'अनार्य दोष परिहार मण्डली' (१८८६) आदि द्रविड़ महाराज सभा का 'द्रविड़ लैंड आन्दोलन' (१८९०), आम रास्ते पर चलने का आन्दोलन १८९३ (पहली पाठशाला अय्यनकाली केरल १९०५), केरल में अय्यनकाली के नेतृत्व में 'साधु परिपालन संघ' (१९०७), श्यामसुन्दर का 'भीमसेना का आरंभ' (१९०८ - १९७५), राजस्थान के बाँसवाड़ा और डूंगापुर में 'भील विद्रोह' (१९१३), आंध्रा प्रदेश में 'आदि आंध्रा आंदोलन' (१९१७), आगरा में पण्डित सुंदरलाल सागर के नेतृत्व में 'जाटव महासभा' (१९१७), स्वामी अछूतानंद हरिहर के नेतृत्व में

‘आदि हिन्दू आन्दोलन’ (१९२२), गोरखपुर का ‘चौरा-चौरी आन्दोलन’ (१९२२), पंजाब में बाबा मंगूराम मुगोवालिया के नेतृत्व में ‘आदि धर्म आन्दोलन’ (१९२६), तमिलनाडु में पेरियार रामस्वामी नायकर के नेतृत्व में ‘ओम सम्मान आन्दोलन’ (१९२५), डॉ. बाबा साहब अंबेडकर के नेतृत्व में ‘महाड़ आन्दोलन’ (चावदान तालाब, १९२७), ‘कर्नाटक संघ आन्दोलन’ (१९३०), ‘चिरनार आन्दोलन’ (१९३०), डॉ. बाबा साहब अंबेडकर द्वारा ‘बौद्ध धर्म स्वीकार करना’ (१९५६)<sup>१</sup>

‘नाम शूद्र आन्दोलन’ बंगाल में हुआ। ‘चांद गुरु’ इस आंदोलन का प्रमुख प्रवर्तक था। समाज के गलत फहमियों को दूर करना इसका लक्ष्य था। बंगाल में शूद्र के लिए ‘चंडाल’ कहा जाता था। ब्रिटिश सरकार को सन् १८९१ इन लोगों ने एक निवेदन दिया; इसका विषय था, ‘चंडाल’ शब्द के विरुद्ध ‘नाम शूद्र’ शब्द प्रयुक्त करवाना। सन् १९१२ ई में. ‘चाँद गुरु’ ने ‘नमः शूद्र’ पत्रिका का प्रकाशन किया। इस प्रकार शूद्रों में व्याप्त अंधविश्वासों को मिटाने में यह आंदोलन सफल निकले। दलितों के बीच के जातीय भेदभाव दूर करने के लिए मध्य प्रदेश छत्तीसगढ़ इलाके में ‘सतनामी आंदोलन’ गुरु घासीदास द्वारा चलाया गया। उन्होंने ‘सतनामी संप्रदाय’ की स्थापना की। ‘सतनामी बने, संगठन बनाओ और संघर्ष करो’ उनके आंदोलन के तीन सूत्र थे। रामस्वामी नायकर के नेतृत्व में तमिलनाडु में आत्मसम्मान आंदोलन की शुरुआत हुई। इसका मुख्य उद्देश्य आम जनता के हित में सामाजिक सुधार लाना था। वे अछूत, पिछड़ी जातियों तथा स्त्रियों की शिक्षा के समर्थक थे। वे हिन्दू वर्णवादी व्यवस्था के विरोध करने के साथ-साथ हिन्दुत्व को खतम कर देने की बात की। उन्हीं के शब्दों में- “हिन्दुत्व एक मायने में अन्य धर्मों से भिन्न है। इस धर्म में सभी ब्राह्मण शिक्षित हैं और सिर्फ वे ही ज्ञान और बौद्धिकता की बागडोर संभाले हुए हैं। दूसरे लोगों में ९० प्रतिशत से भी अधिक अशिक्षित और मूर्ख हैं। एक ही धर्म को मानने वाले समाज में यदि सिर्फ एक समुदाय

<sup>१</sup> डॉ. हरिनारायण ठाकूर, *दलित साहित्य का समाज शास्त्र*, पृ. ३१५-३२०.

शिक्षित और प्रभावी बन सकने का अधिकार रखता है तो क्या हमें यह नहीं समझना चाहिए कि यह धर्म अन्य समुदायों के लिए अनिष्टकर है? इसलिए मैं कहता हूँ कि हिन्दुत्व एक घटिया धर्म है। इसका नाश हो जाना चाहिए”<sup>1</sup> सन् १९२५ ई. में गैर ब्राह्मणों और दलित वर्ग के नेताओं को साल में लेकर-कांग्रेस के कांचीपुरम अधिवेशन में एक मसविदा तैयार किया। इसका विषय था ब्राह्मणों को उनकी आबादी के अनुपात से आरक्षण कर दिया जाय। पेरियार के इस क्रांतिकारी चिंतन ने ब्राह्मणों को उलझा दिया। बाद में उन्होंने कांग्रेस पार्टी को ब्राह्मणवाद के वर्चस्व से प्रभावित मानकर उसे छोड़ दिया। १९२७ ई में पेरियार की अध्यक्षता में ‘तमिलनाडु कांग्रेस’ का अधिवेशन हुआ। इसमें उन्होंने दलित अधिकारों की वकालत की। सन् १९९४ ई में द्रविड़ कण्ठम की स्थापना किया। उनका समाज सुधार आंदोलन धीरे से दलितों में चेतना, जागृत तथा आत्मसम्मान की ओर ले चले।

सन् १९२६ ई में पंजाब में आदि-धर्म आन्दोलन का प्रारंभ हुआ। समान अधिकार प्राप्ति ही इसका लक्ष्य था। इस आन्दोलन का दावा था कि वे भारत के आदि या मूल निवासी हैं। पंजाब के संगठन चलाने वाले नेताओं ने यह माँग किया कि आगामी जनगणना (१९३१) में उन्हें हिन्दू की बजाय ‘आदि धर्मी’ लिखा जाना चाहिए। सरकार ने उनकी बात मानकर नए शीर्षक में आदि-धर्मी लिखने का आदेश दिया। इसका परिणाम यह हुआ कि पंजाब के अछूतों की जनसंख्या में कमी आ गयी। इसके संबंध में डॉ. अंबेडकर ने कहा “इसकी वजह आदि-धर्म आन्दोलन है। सन १९३१ ई की जनगणना में भाग लेने वाले आन्दोलन के कार्यकर्ताओं ने अपने लोगों और स्वयं को आदि-धर्मी लिखवाया था, हिन्दु नहीं, जैसा कि पहले होता आया था”<sup>२</sup>। इस प्रकार पंजाब का आदि-

<sup>१</sup> शंभुनाथ (सं), ई. वी.रामस्वामि नायकर, *सामाजिक क्रांति का दस्तावेज*, भाग, २, , पृ. १२२२.

<sup>२</sup> डॉ. श्यामसिंह राशि (प्र. सं), डॉ. अंबेडकर, बाबा साहेब डा. अंबेडकर संपूर्ण, वाङ्मय, खण्ड २, पृ. ४९१.

धर्म आन्दोलन बहुआयामी आन्दोलन था। ये आंदोलन केवल दलित समाज की मानसिकता बदलने के लिए ही नहीं शुरू किया गया था बल्कि पूरे भारतीय समाज की मानसिकता बदलना इसका लक्ष्य था। दलित आंदोलन भारतीय संस्कृति की पुनर्व्याख्या द्वारा उसका परिष्कार करना चाहता है। इसलिए यह एक सांस्कृतिक आंदोलन भी है। भारत की संस्कृति प्राचीन साहित्य एवं धर्म ग्रन्थों की व्याख्या पर आधारित है। भारत की प्राचीन संस्कृति को लेकर आर्य और अनार्य के संबन्ध में विद्वानों में मत भेद है। संस्कृति की व्याख्या भाग्य और भगवान की दृष्टि से नहीं बल्कि तर्क और ज्ञान की दृष्टि से करना चाहता है। संस्कृति की पुनर्व्याख्या के माध्यम से वर्ग-वर्ण, श्रेष्ठ-अश्रेष्ठ आदि चिंताओं से दूर होकर मानव-मानव को सम्मान समानता एवं भाईचारे की मूल्य को समझाना चाहते हैं। इन आंदोलनों ने दलितों पर अस्मिता एवं चेतना को जगाया। इसी प्रकार लगभग पूरे भारत में दलित आंदोलन का प्रचार और प्रसार हो रहा था। अतः हम आसानी से कह सकते हैं कि इसी संदर्भ से लेकर दलित आंदोलनों का भारतीय स्वरूप सामने आ रहा था। जिसके नेतृत्व में महात्मा फुले, डॉ. बाबा अंबेडकर के विचारों के आधार प्रमुख थी।

#### **२.४.१०.१ दलित आंदोलन तथा डॉ. बाबा साहब अंबेडकर**

समाज में परिवर्तन लाने के लिए बाबा अंबेडकर-पूर्व दलित आंदोलनों ने प्रयत्न किया उसका ज़्यादा असर समाज में नहीं हुआ क्योंकि इन आन्दोलनों ने प्रतिरोध, सुधार तथा अप्पीलों में ज्यादा ज़ोर दिया था। फिर भी इन आंदोलनों ने आगे के आंदोलनों को प्रेरणा दी और पृष्ठभूमि भी प्रस्तुत की। महात्मा फुले से प्रेरणा पाकर डॉ. बाबा साहब अंबेडकर सन् १९१९ ई से लेकर दलित आन्दोलन के प्रमुख प्रवर्तक बने। इनके आन्दोलन की विशेषता व्यक्त करते हुए केवल भारती का कहना है- “इन आन्दोलन की विशेषता यह है कि इसने हिन्दू व्यवस्था के विरुद्ध सीधी कार्यवाही (डायरेक्ट एक्शन) के रूप में खुला विद्रोह किया। खुले शब्दों में आप समझ सकते हैं कि सामूहिक रूप से हिंदू



व्यवस्था का उल्लंघन किया था। यह परिवर्तन सन् १९२०ई आसपास आया”<sup>१</sup> डॉ. बाबा अंबेडकर ने अपना निबंध ‘अछूतों का विद्रोह’ में इस परिवर्तन के कारणों को यूँ व्यक्त किया है- “पहला कारण यह था कि दलितों को यह अनुभव होने लगा था कि अपीलों और प्रतिरोध हिन्दू व्यवस्था को बदल नहीं सकते, क्योंकि हिन्दुओं के दिलों पर इसका कोई असर नहीं होता था। दूसरा कारण यह था कि सरकार ने सभी सार्वजनिक सुविधाएँ और संस्थाएँ दलितों के लिए खोलने की घोषणा कर दी। परन्तु हिन्दुओं के विरोध के कारण दलित उसका उपयोग नहीं कर पा रहे थे। अंततः सीधी कार्यवाही करने के सिवा अपने अधिकार को पाने के लिए अन्य कोई रास्ता दलितों के पास बचा नहीं था”<sup>२</sup>। इसलिए बाबा अंबेडकर आंदोलन सीधी तथा खुले विद्रोह से युक्त है।

बाबा साहब अम्बेडकर ने सन् १९१९ में ‘साउथ ब्यूरो कमीशन’ के सामने अस्पृश्यों के राजनीतिक अधिकार की कैफियत प्रस्तुत कर अपने सार्वजनिक जीवन की शुरूआत की। १९२० में उन्होंने अस्पृश्यों के प्रश्न को मंच प्रदान करने हेतु ‘मूकनायक’ पत्र शुरू किया। इसके ज़रिए उन्होंने व्यक्तिगत स्वतंत्रता मताधिकार, राजनैतिक अधिकार आदि के लिए दलितों को अवगत कराया। १९२४ में उन्होंने ‘अखिल बहिष्कृत हितकारिणी सभा’ की स्थापना की। इसका उद्देश्य दलित युवकों को शिक्षित कराना, आन्दोलन के लिए संगठित करना तथा अपनी परिस्थितियों के बारे में जागृति लाना था। दलितों द्वारा पीने का पानी के अधिकार के लिए किया गया ‘महाड तालाब मार्च’ (चौदार तालाब) दलित आन्दोलन के इतिहास में एक महत्वपूर्ण घटना है। “बंबई विधान परिषद में ए. के बोले ने एक प्रस्ताव के ज़रिए अस्पृश्यों हेतु सार्वजनिक जल-स्रोतों, कुओं, सरकारी कार्यालयों, स्कूलों-कचहरियों, सरकार द्वारा निर्मित धर्मशालाओं दवाखानों के

<sup>१</sup> कंवल भारती, *दलित विमर्श की भूमिका*, पृ. ५८.

<sup>२</sup> डॉ. बी.आर. अंबेडकर, *अछूतों का विद्रोह*, पृ. १५

उपयोग की माँग की। ११ सितंबर १९२३ को सरकारी आदेशानुसार इस प्रस्ताव को कार्यान्वित किया गया।<sup>१</sup> तीन वर्ष के बाद सन् १९२६ ई में पुनः प्रस्ताव रखने के फलस्वरूप महाड़ तालाब सभी के लिए खोल दिया। १९२७ को डॉ. अंबेडकर के नेतृत्व में दलित जातियों का सम्मेलन हुआ। इसके प्रतिनिधियों ने अपने मौलिक अधिकार हेतु चौदार तालाब से पानी पिया। सवर्णों द्वारा संघर्ष तथा कष्ट होने पर भी वे अपने काम में सफल निकले।

दलित मुक्ति आन्दोलन की शुरूआत को हम डॉ. बाबा साहब अम्बेडकर द्वारा २४ दिसंबर १९२७ को मनुस्मृति के दहन और दलित मुक्ति संग्राम से जोड़कर देख सकते हैं। मनुस्मृति दहन के द्वारा डॉ. अम्बेडकर ने मनु द्वारा निर्मित हिन्दू धर्म के विषम समाज रचना की मूल विचारधारा को नष्ट करने तथा उसके प्रति विरोध प्रकट करने का प्रयत्न था। बाबा साहब ने 'साइमन कमीशन' को निवेदन प्रस्तुत कर अस्पृश्यों के राजनीतिक अधिकारों की माँग की थी। इसका उद्देश्य भेदभाव के खिलाफ संरक्षण, विधान मंडल तथा नौकरियों में दलितों का प्रतिनिधित्व, कानून, विधायिका और कार्यपालिका में पर्याप्त अधिकार प्राप्त करना था। फलस्वरूप कमीशन ने १९३० में ब्रिटीश सरकार की ओर से लंदन में गोलमेज़ परिषद का आयोजन किया। यह इसलिए है कि ब्रिटीश सरकार भारत के लिए भारतीयों से परामर्श करके नया संविधान बनाना चाहता था। सन् १९३० में उन्होंने नासिक के 'कालाराम मन्दिर' में सत्याग्रह किया। यह सत्याग्रह केवल मन्दिर प्रवेश के लिए नहीं था अपितु इसके पीछे हम हिन्दू हैं, हमें भी अन्य हिन्दुओं की तरह हिन्दू के मन्दिर में जाने का अधिकार है यह भूमिका थी। सन् १९३२ में जातीय निर्णय घोषित हुआ और सिक्ख, मुस्लिम, ईसाई, ऍंग्लो इण्डियन तथा रियासतदारों के साथ अस्पृश्यों के लिए स्वतंत्र निर्वाचन क्षेत्र की माँग की। बाबा

---

१ कन्हैया लाल चंचरीक, *भारत में दलित आंदोलन*, खण्ड- पृ. १०८

अम्बेडकर ने घोषित किया- “मैं हिन्दू के रूप में पैदा हुआ जो मेरी मजबूरी थी, लेकिन मैं हिन्दू के रूप में मरूंगा नहीं।”<sup>१</sup>

ब्रिटिश प्रधानमंत्री ने १७ अगस्त १९३२ को ‘कम्यूनल अवार्ड’ की घोषणा की। इसमें दलित जातियों को आम निर्वाचन में मत देने तथा पृथक निर्वाचन का अधिकार भी मिला। इसके विरोध में गाँधिजी ने आमरण अनशन शुरू किया। डॉ. अंबेडकर और कांग्रेस नेताओं के बीच चर्चा के नाते बाबा साहब गाँधिजी के साथ समझौता करने के लिए मजबूर हुए। अछूतों के लिए पृथक निर्वाचन से मंडल की अपनी माँग से हटने के लिए तैयार हुआ। इन दो नेताओं के बीच के समझौता दलित इतिहास में ‘पूना पैकट’ के नाम से जाना जाता है। पूना पैकट के अनुसार कम्यूनल अवार्ड के बदले अछूतों के लिए कुछ सीटें रखी जहाँ अछूत के अलावा हिन्दू-मुसलमान या अन्य धर्म लोग चुनाव न लड सकें। बाबा साहब अंबेडकर ने दलित, पिछड़े, भूमिहीन, श्रमिक आदि की ओर सरकार का ध्यान लाने के लिए १९३६ में ‘इंडिपेंडेंट लेबर पार्टी’ की स्थापना किया। शिक्षा के महत्व को समझकर डॉ. अम्बेडकर ने सन् १९४५ में बंबई में ‘पीपुल्स एज्युकेशन सोसायटी’ की स्थापना की, जिसके अंतर्गत बंबई में सिद्धार्थ कालेज और औरंगाबाद में मिलिंद कालेज की स्थापना हुई। ये दोनों ही शिक्षा संस्थान डॉ. अम्बेडकर की विचारधारा को आगे बढ़ाने वाले दो महत्वपूर्ण केन्द्र बन गये। अप्रैल १९४२ में शेडयूलड कास्ट फेडरेशन तथा १९५६ में रिपब्लिकन पार्टी को जन्म दिया।

सन् १९४६ ई में बाबा साहब अंबेडकर संविधान प्रारूप समिति के अध्यक्ष बने। उन्होंने अछूतों तथा पिछड़े लोगों के लिए संविधान सभा में आरक्षण करवाया। अस्पृश्यता के उन्मूलन को लेकर डॉ. अंबेडकर का कथन है- “संविधान समिति ने भावि संविधान की जो मसौदा तैयार किया है, उसमें अस्पृश्यों के अधिकार का प्रावधान है। नए संविधान

---

१ शरणकुमार लिंबाले (सं), *दलित साहित्य वेदना और विद्रोह*, पृ.

की ९ वीं धारा द्वारा अस्पृश्यता को समूल नष्ट कर दिया गया है। किसी प्रकार का जातिभेद, ऊँच- नीच की भावना रद्ध कर दी गयी है”<sup>१</sup>। डॉ. अंबेडकर वह पहला महान व्यक्ति है जिन्होंने अस्पृश्यता निवारण को संविधान के अन्तर्गत लागू किया। डॉ. अंबेडकर सन् १९४७ ई में भारत के पहले कानून मंत्री बने। उन्होंने लोकसभा में सन् १९४८ को हिन्दू कोड बिल पेश किया। पंडित नेहरु की सलाह से बाबा अंबेडकर ने इस बिल का संशोधन किया। “The bill embodied several basic principles of women's rights: It sought to abolish different marriage systems prevalent among Hindu and to establish monogamy as the only legal system. It aimed at conferment of right to property and adoption on women. It provided for restitution of conjugal rights and judicial separatism. It attempted to unify the Hindu code in tune with progressive and modern thought.”<sup>२</sup> लेकिन इस बिल का विरोध होने के कारण नाकामयाब रहा।

बाबा साहब अंबेडकर के संपूर्ण कार्यक्रम समाज के दलित और पिछड़े वर्ग के लोगों के उद्धार तथा अस्पृश्यता निवारण को लक्ष्य करते थे। लेकिन इन आंदोलन का मूल स्वर समानता का रहा न कि भेद भाव का। हिन्दू धर्म की वर्णव्यवस्था को समाप्त करने के लिए बाबा अंबेडकर के सामने कोई रास्ता नहीं था। इसलिए उन्होंने बौद्ध धर्म (१९५६) को स्वीकार करने का निश्चय किया। बौद्ध धर्म स्वीकार करने के बाद भी दलितों में या भारतीय समाज में समानता कहाँ तक लागू हुआ है यह भी आज विचारणीय एवं अध्ययन का विषय है।

---

१ डॉ. अंबेडकर, *सामाजिक क्रांति के दस्तावेज*, शंभुनाथ, (सं) पृ. ८८९.

२ Thomas Mathew, *Ambedkar: Reformer revolution*, p. 72.

## २.४.१०.२ दलित साहित्यिक आंदोलन

दलित आंदोलन को सही ढंग से आगे बढ़ाने के लिए एक ऐतिहासिक और साहित्यिक पृष्ठभूमि की ज़रूरत है। क्योंकि मुख्यधारा साहित्य में उनकी अपनी कोई गरिमा और अस्तित्व की बात नहीं कहीं गई है; मूल कारण वर्णाश्रम व्यवस्था ही है। अतः दलित साहित्यिक आंदोलन का महत्व अपने आप में स्वयं सिद्ध हो जाता है। दलित साहित्यिक आंदोलन वस्तुतः दलित आंदोलन का ही एक अंग है। हम जानते हैं कि मानव समाज में जातिगत भेदभाव अपने आप नहीं पैदा हुआ। अतः समाजिक वर्णव्यवस्था तथा दण्डविधान की नियमावली के अंतर्गत इसका उदय हुआ।

महात्मा फुले अस्पृश्यता निवारण और बहुजन समाज के हित के लिए जीवन भर कार्य करनेवाले महत् व्यक्ति हैं। उन्होंने अपना पूरा जीवन मूल निवासी बहुजन समाज के मान-सम्मान और स्वाभिमान की भावना जगाने के लिए समर्पित कर दिया। १९ वीं सदी के मध्य में एक महान सामाजिक आंदोलन का सूत्रपात उन्होंने किया। किसानों, मज़दूरों, महिलाओं और सारे पिछड़े लोगों को, उनके अधिकार दिलाने के लिए वे जीवन भर संघर्ष करते रहे। महाराष्ट्र के पूणे शहर हमेशा ही ब्राह्मणवाद का गढ़ रहा था। पूणे में महात्मा फुले ने अपने क्रांतिकारी सामाजिक कार्य का आरंभ किया। उनकी पत्नी सावित्री बाई फुले भी वर्ण व्यवस्था एवं जाति-व्यवस्था के कट्टर विरोधी थीं। हिंदुओं में असमानता की भावना पैदा करनेवाली इस व्यवस्था पर उन्होंने निरंतर आवाज़ उठायी। मानव जाति की स्वतंत्रता ही उनके चिंतन का विषय था। ज्योतिराव फुले के विचारों और उनके क्रांतिकारी कार्यों से भारत समाज को निरंतर उर्जा मिली। उन्होंने 'सत्यशोधक आंदोलन' का नेतृत्व किया। इस आंदोलन का मुख्य कार्य-ईश्वर और भक्त के बीच के दलालों को नष्ट करना, शिक्षा में समानता का भाव उत्पन्न करना था। इसी के साथ उन्होंने साहित्यिक रचनाओं के ज़रिए आंदोलनों को शक्ति प्रदान कर रहे थे।

उन्होंने 'तृतीय रत्न' (नाटक १८५५), 'पवाड़ा छत्रपति शिवाजी भोसले चान्चा' (१८६९), 'ब्राह्मणाचे कसब' (१८६९), 'गुलामगिरी' (१८७३), 'शंतक याचा आसूड' (१८८३), 'सत्सार अंका' (१८८५), 'इशारा' (१८८५), 'सार्वजनिक सत्यधर्म' (१८९१) तथा 'अखण्ड' आदि काव्य रचना कर स्त्री शूद्र तथा अतिशूद्रों की व्यथा-वेदना को वाणी दिया। उनके साप्ताहिक पत्र का नाम 'दीनबन्धु' था। मनुस्मृति एक विषवल्ली है -ऐसी उनकी ठोस राय थी। मनुस्मृति ने स्त्री, शूद्र, अतिशूद्रों की मनुष्यता को नकारा इसलिए उसे जला देना चाहिए ऐसा स्पष्ट मत उन्होंने प्रकट किया था। महात्मा फुले ने दलितों को ललकारते हुए कहा कि डरो मत, मेरी तरह निडर बनो। शिक्षा से ही तुम्हारा उद्धार व सुधार होगा। उन्होंने शूद्रों की दुर्गति का खास कारण बताते हुए कहा-

“अशिक्षा से बुद्धि गयी/ बुद्धि के बगैर नीति गयी/

नीति के बगैर प्रगति गयी।/ और प्रगति के बगैर/शूद्रों की दुर्गति हुई।”<sup>१</sup>

महात्मा फुले ने स्वयं लिखा-

“शूद्र जर्जर/चलता लकड़ी के सहारे पर।

तीन पांव के पशु बन गये।/ पीड़ा यह रोकर बतलाया।

द्विजों ने शूद्रों को सताया।”<sup>२</sup>

महात्मा फुले का प्रसिद्ध ग्रंथ है 'गुलामगिरी'। डॉ. मैनेजर पाण्डेय ने 'गुलामगिरी' ग्रंथ को दलितों का घोषणा पत्र कहा है। उन्हीं के शब्दों में “उन्होंने १८७३ ई. में 'गुलामनारी' नामक पुस्तक लिखी थी। जिसे दलित आंदोलन का घोषणा पत्र और बुनियादी दस्तावेज कहा जाता है।”<sup>३</sup> “महात्मा फुले एक संघर्षशील नेता और चातुर्वर्ण्य

१ राजमल सिंह राज, *अम्बेडकर बनाम सामाजिक परिवर्तन*, पृ.३४

२ माताप्रसाद, *दलित साहित्य दशा और दिशा*, पृ.१२४

३ दलित चेतना विशेषांक, पृ.१८३

तथा जातिभेद पर कठोर प्रहार करके मानवीय समानता की घोषणा करने वाले प्रथम लोक नेता थे।”<sup>१</sup> इस तरह महात्मा फुले दलित समाज को अपने अधिकारों के प्रति अवगत कराते हुए दलित आन्दोलनों को वैचारिक पृष्ठभूमि तैयार करने में सफल हुए।

हिन्दू समाज में जाति व्यवस्था और अस्पृश्यता का इतिहास जितना पुराना है, उसके विरोध की परंपरा भी उतनी ही पुरानी है। बाबा अंबेडकर एवं उनके राजनैतिक सहयोगियों ने देश के इतिहास में अस्पृश्यता एवं अस्पृश्यों की समस्याओं की पहली बार एक राजनैतिक तथ्य के रूप में प्रस्तुत किया और उसके समाधान के लिए राजनैतिक प्रक्रिया को अपनाया। उन्होंने दलितों के लिए राजनीति में ‘एक आदमी एक वोट’ के सिद्धान्त को लागू करवाया। १९४७ में डॉ. भीमराव अम्बेडकर नेहरू मंत्रिमंडल में कानून मंत्री बने तथा १९४८ में ड्राफ्टिंग कमेटी के अध्यक्ष के रूप में संविधान असेम्बली में मसौदा प्रस्तुत किया। २६ जनवरी १९५० को देश में लोकतांत्रिक शासन प्रणाली बनाकर मताधिकार का प्रावधान बनाया। मण्डल कमीशन के तहत पिछड़े वर्ग के लोगों को जो भी आरक्षण और सुविधाएं प्राप्त हैं यह सब संविधान की धारा ३४० की ही देन है। हिन्दू कोड बिल पास न होने के कारण १९५१ में डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने मंत्रिमण्डल से त्याग-पत्र दे दिया था। धर्म के क्षेत्र में डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने ‘द बुद्धा एण्ड हिज़ धम्म’ पुस्तक लिखी जो बौद्ध बाइबिल के नाम से जानी जाती है। दिनांक १४ अक्टूबर, वर्ष १९५६ को डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने नागपुर में बौद्ध धर्म की दीक्षा ली। डॉ. बाबा अम्बेडकर अर्थशास्त्र में विशेष रुचि रखते थे। शुरू में उन्होंने ‘Problems of the Rupee’ यह शोध परख आलेख लिखा। डॉ. अम्बेडकर ने दलितों से आह्वान किया था कि वे अपनी आय का पाँचवा हिस्सा समाज पर खर्च करें। इससे उनका आशय था कि दलितों में जो लोग आराम से अपनी रोजी-रोटी चला रहे हैं, वे समाज के अपने

---

१ लक्ष्मण शास्त्री जोशी, महात्मा फुले समग्रय प्रस्तावना, प्रथम संस्करण, पृ.१

दूसरे भाइयों के उत्थान की ओर ध्यान दें, तथा उसके लिये दान दें। दलित साहित्य, दलितों में उनके दलित होने का अहसास दिला रहा है। डॉ.बाबा अम्बेडकर कहते हैं कि-“मनुष्य मात्र को एक तर्कशील जमात बनना होगा। मनुष्य को मनुष्य बनना होगा, जिसमें प्रेम, सहिष्णुता सच्चाई, करुणा, विवेक, और मेहनत करने का मादा हो, जिसमें आत्म-सम्मान हो और दूसरों को सम्मान देने की आदत हो, जो छद्म से दूर एक खुली किताब हो।”<sup>१</sup>

उन्होंने सभी ग्रन्थ अंग्रेज़ी में लिखे, उनके सभी ग्रंथ मौलिक हैं। 'Caste in India', 'Annihilation of caste', 'Who are the Shudras?', 'Untouchables', "who were they and why they became untouchables", 'Philosophy of Hinduism', 'India and pre requisites of communism', 'Revolution and counter revolution on Ancient India', 'Riddites in Hinduism', 'Ranalle Gandhi and Jnnha', 'Thoughts of Pakistan', 'Buddhism and Communism' इन सभी ग्रन्थों में वे समाज व्यवस्था को समाजशास्त्रीय नज़रिये से अनुसंधान परक गहराई से अध्ययन प्रस्तुत किया हैं। डॉ.बाबा अम्बेडकर एक महान ज्ञानी पुरुष थे। उन्होंने मनुष्य को मनुष्य के रूप में जोश देनेवाले विचार और उससे निष्पन्न होनेवाले मूल्यों को आत्मसाथ किया था। उनके संपूर्ण व्यक्तित्व पर महात्मा बुद्ध, कबीर व ज्योतिबा फुले जैसे आदर्श पुरुषों का गहरा असर रहा है। डॉ. अंबेडकर को 'दलितों का महीसा' कहते हैं।

सन् १९५९ ई तक आते-आते भारतीय रिपब्लिक पार्टी का विघटन होने से दलित जनता भी विघटित हुई। इन दलितों को एकीकृत करके संघर्ष एवं जागरूक बनाने के लिए दलित पैथर आंदोलन महाराष्ट्र में शुरु हुआ। अमरिका 'ब्लैक पैथर आन्दोलन' से प्रभावित होकर वे अपने आंदोलन के लिए 'दलित पैथर आंदोलन' नाम दिया। अनुसूचित जातियों पर प्रत्यक्ष रूप में सन् १९७० ई के आस पास अत्याचार होने के कारण दलित

---

१ डॉ. हरिनारायण ठाकुर, *दलित साहित्य का समाजशास्त्र*- पृ.९८



पैंथर एक 'मानिफेस्टो' के रूप में संगठित हुआ। राजा ढाले इसका प्रेसिडेंट, नाम देव ढसाल इसके प्रतिरोधमंत्री और जे. वी. पवार जेनरल सेक्रेटरी बने। उनके मानिफेस्टो में अठारह माँगें सूचित थीं। उनका लक्ष्य सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक स्तर पर अपना अधिकार स्थापित करना था। इसकी शाखाएँ शहर तथा गाँव में खुली। पैंथर ने एक हथियार के रूप में बाबा साहब अंबेडकर की विचारधारा का उपयोग किया। स्वतंत्रता की २५ वीं वर्षगांठ मनाने के विरोध में १५ अगस्त १९७२ को पैंथरों ने मोर्चा निकालते हुए काला स्वतंत्रता दिवस मनाया। 'काला स्वतंत्रता दिन' नामक लेख के लिए राजा ढाले पर केस थोपा गया। इसके विरोध में पूणे में कांडनसिल हाल में तीन दिन की केबिनेट बैठक के समय १० सितंबर १९७२ को पैंथरों ने मोर्चा निकाला। दलित पैंथरों का विद्रोह सामंतवादी राजनीतिक अधिकारों तथा पूँजीवादी से है। बाद में दलित पैंथर 'ढाले गुट' तथा 'ढसाल गुट' नाम से दो गुटों में बांट गए। ढसाल गुट दलितों की आर्थिक न्याय के पक्ष पर थे। ढाले गुट दलितों पर हो रहे अत्याचारों के खिलाफ दो ज्ञापन मुख्य मंत्री को प्रस्तुत किये गये। पहला ज्ञापन सन् १९७५ दिसंबर की मांग है- "अवैधानिक तरीके से छीनी गई ज़मीन का पुनर्वितरण द्वारा अधिकार असली मालिकों को दी जाए। जातिवादी अत्याचारों में लिप्त अपराधियों को 'मीसा' के अन्तर्गत गिरफ्तार किया जाए। दलित छात्रों की छात्रावृत्तियों और दलितों के लिए रोज़गार बढ़ाए जाए। डॉ. बाबा अंबेडकर के लेखों को दूसरी भाषाओं में अनुवादित किया जाए। दलितों की आवास-ऋण सुविधाएँ बढ़ाया जाए और को- ओपरेटीव- सोसाइटियों में दलितों को शेयर धारकों के रूप में पंजीकरण है।"<sup>१</sup> दूसरा ज्ञापन सन् १९७६ ई जनवरी को प्रस्तुत किया गया जिनकी प्रमुख मांगें हैं- "दलित पैंथरों के विरुद्ध सभी केसों को वापस लिया जाए। बारहवीं कक्षा के दलित छात्रों के लिए छात्रवृत्तियाँ बढ़ाया जाए। डॉ. अंबेडकर जयंती पर

---

१ अजय कुमार, *दलित पैंथर आंदोलन*, पृ. ६७.

बंदिशें हटाया जाए और दलितों के लिए अलग से एक रोजगार कार्यक्रम हो”<sup>१</sup>। इन ज्ञापनों के फलस्वरूप सरकार की ओर से दलित पेंथर सफल निकले। सन् १९७७ई तक कई गुटों में पेंथर संगठन बांटा गया तथा अपना-अपना अलग-अलग आंदोलन चलाये गये। इसमें प्रमुख थे, मास मूवमेंट, महाराष्ट्र दलित पेंथर आदि। मास मूवमेंट का मांग थी कि “नौकरी लगाने की आयु के अन्तर्गत ही बेरोजगार युवकों को कुछ सत्ता दिया जाए”<sup>२</sup> दलित पेंथर ने दलितों को जाति व्यवस्था तथा दासता से लड़ने के लिए सशक्त बनाया। ‘दलित’ शब्द को अछूत तथा हरिजन शब्द के बदले प्रचार करने में पेंथर ने बड़ी भूमिका निभाई।

मराठी दलित साहित्यकारों में पद्मश्री दयापवार के प्रथम कविता संग्रह ‘कोडवाडा’ १९७४ में, ‘बलुंत’ (अछूत) १९७८ में ‘विटाक’ कथा संग्रह, तथा ‘चावडी’ (विविध लेखों का संग्रह, १९८३) आदि, अर्जुन डांगले के ‘छावणी हलते आहे’ (छावणी उठने लगी है १९७७) कविता संग्रह, ‘उदवस्त क्षितिज’ (१९७६) और ‘बांधावरची माणसे’ (हाशिए के लोग, १९७९) दोनों कहानी संग्रह, शरणकुमार लिंबाले के ‘अक्करमासी’ आदि, वामन निंबालकर के ‘गाँव कुसाबा हेटिल’, ‘महायुद्ध’ (काव्य संग्रह) ‘अस्मिता दर्शयी नरु वर्षे’ आदि, केशव मेश्राम के ‘पोखरण’ (१९७९) ‘एकीकत व जटायू’ (उपन्यास, १९८०) ‘जुगलबंदी’, ‘अकस्मता और चरित्र’ (कविता संग्रह) आदि रचनाएँ प्रकाशित हुई हैं। इनके अलावा देश, विदेश की भाषाओं में दलित साहित्य लेखन एवं अनुवाद आज प्रचुर मात्रा में हो रहा है।

---

१ अजय कुमार, *दलित पेंथर आंदोलन*, पृ. ६७-६८.

२ वही, पृ. १११.

## २.४.११ दलित चेतना और अस्मिता (नई दृष्टि)

चेतना का मतलब दृष्टि से होता है। दलित को किन बातों से सरोकार रखना है किससे नहीं, इस विचार का ज्ञान दलित चेतना कहलाती है। चेतना से तात्पर्य है अपने आप को पहचानना कि हम क्या हैं? ओमप्रकाश वाल्मीकि दलित चेतना को परिभाषित करते हुए कहते हैं कि-“दलित चेतना का सीधा सरोकार-में कौन हूँ? से बहुत गहरे तक जुड़ा है। चेतना का संबंध दृष्टि से होता है जो दलितों की सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और सामाजिक भूमिका की छवि के तिलिस्म को तोड़ती है। अधिकारों से वंचित, अधिकारों से नकार दिया जाना यानी दलित होना और उसकी चेतना यानी दलित चेतना।”<sup>१</sup> दलित चेतना डॉ. बाबा अम्बेडकर के जीवन दर्शन, विचार तथा महात्मा बुद्ध के भौतिकवादी दार्शनिकता से ऊर्जा ग्रहण करती है। यह स्वानुभूति और परिवर्तनकामी चेतना है। दलित चेतना के बारे में डॉ. सुमनाक्षर कहते हैं- “दलितों के अन्दर, जो उनके मौलिक अधिकार हैं, उनके प्रति चेतना जाग्रत करें, वह है दलित चेतना।”<sup>२</sup> सदियों से अपने मौलिक मानवीय अधिकारों से वंचित दलितों में चेतना जागृत करने के लिए जहाँ भगवान बुद्ध ने कहा कि-अपने दीपक स्वयं बनो। वही बाबा साहेब ने तीन मूल मंत्र दिए-शिक्षित बनो, संगठित हो, संघर्ष करो।

दलित चेतना से मतलब वर्गहीन, वर्णहीन और जातिविहीन मनुष्य है। मानव धर्म की प्रतिष्ठा करना उसका लक्ष्य है। दलित साहित्य में दलित चेतना के दो प्रमुख बिंदु हैं। प्रथम दलित साहित्य मनुष्यता की माँग करता है। द्वितीय दलित जीवन की भयावह यातनाओं का खुला और निर्मम चित्रण करता है। अनुभवों और निष्कर्षों को प्रकट करना तथा वेदना जगाने का काम अस्मिता ही करती है। चेतना के स्तर पर जब कोई

---

१ ओमप्रकाश वाल्मीकि, *मुख्यधारा और दलित साहित्य*, पृ.५०.

२ धीरजभाई वणकर, *दलित विमर्श*, पृ.१०

तर्क जागृत हो जाता है वही अस्मिता का पहला चरण है। इसी शक्ति के दम पर दलित लेखन यथार्थ (वस्तुतिथि) को व्यक्त करता है। अस्मिता समाज में समानता लाना चाहती है। यही कारण है कि अस्मिता आत्मकेन्द्रिता से दूर होकर सब के लिए धरातल के निर्माण का कार्य करती है। अस्मिता जब जागृत होती है तो तीन कदम उठाती है- अस्वीकार, विरोध और विद्रोह। ये तीनों कदम उठाने के लिए जिस समझ की आवश्यकता होती है वह भीतर ही भीतर पनप रहे, आक्रोश से प्रेरित होकर क्रियाशील होती है। दलित-अस्मिता का उद्देश्य अथवा लक्ष्य मानवता की भावना को समता के आधार पर स्थापित और सुदृढ़ करना है। दलित चेतना और अस्मिता की नई दृष्टि जातिविहीन दलित व्यक्ति से है। जो अपनी सारी हीनता भाव को त्याग कर स्वयं अपना विकास करने और अधिकार पाने के प्रति जागरूक है। वह समाज में भेदभाव खत्म कर समता एवं मानवता कायम करने के लिए प्रतिबद्ध है।

आज के हिन्दी दलित साहित्यकारों में; मलखान सिंह का 'सुनो ब्राह्मण' (कविता संग्रह), ओमप्रकाश वाल्मीकि का 'सदियों का संताप' (१९८९), 'बस्स! बहुत हो चुका' (१९९७), 'अब और नहीं' (कविता संग्रह), जूठन (१९९७, आत्मकथा), 'सलाम' (२००० कहानी संग्रह), सूरजपाल चौहान का 'तिरस्कृत' (आत्मकथा), 'हैरी कब आएगा' (कहानी संग्रह) 'प्रयास', 'क्यों विश्वास करू' (कविता संग्रह), मोहनदास नैमिशराय का 'अपने-अपने पिंजरे' (आत्मकथा) 'सफदर एक बयान', 'आग और आंदोलन' (कविता संग्रह), 'अदालतनामा', 'हलो कामरेड' (नाटक), जयप्रकाश कर्दम का 'छप्पर' (उपन्यास), 'गुंगा नहीं था मैं' (कविता संग्रह), ईश कुमार गंगानिया का 'हार नहीं मानूंगा' (कविता संग्रह), जयप्रकाश लीलवान का 'समय के आदमखोर धुन' (कविता संग्रह), सुशीला टाकभौरे का 'स्वति बूंद और खारे मोती', 'अपने हिस्से का सूरज', रजनी तिलक का 'पदचाप', 'हवा सी बेचैन युवतियाँ' (कविता संग्रह) आदि रचनाएँ प्रकाशित हो चुकी हैं। इनके अलावा और भी दलित साहित्यकार हैं जिन्होंने दलित साहित्य को

आगे बढ़ाने में महत्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं। इन रचनाओं में दलित चेतना और अस्मिता की नई दृष्टि देख सकते हैं। जो मनुष्य और मनुष्य के बीच की असमानता को खतम करके मानवता की बात करती है।

## २.१२ निष्कर्ष

आज दलित कविता का प्रसार देश के कोने-कोने में देखने को मिलता है। भारत की सभी प्रमुख भाषाओं में दलित साहित्य पढ़ने को मिलता है। अनेक दलित कवि और गैर दलित कवि इस पर कलम चला रहे हैं। दलितों के प्रेरणा-स्रोत में प्रमुख है 'समता दर्शन'। भारतरत्न डॉ. बाबा साहब अम्बेडकर ने तीन मूल मंत्र दिए- शिक्षित बनो, संगठित रहो और संघर्ष करो। दलित सदियों की दासता और शोषण, दमन, उत्पीड़न के कारण, हीन भावना से ग्रसित थे। इसी हीन भावना को तोड़कर एक मनुष्य के रूप में उसकी पहचान और स्वाभिमान को स्थापित करना दलित कविता का प्रमुख उद्देश्य मान सकते हैं। वर्ण व्यवस्था से पीड़ित समुदाय की वेदना ही हिन्दी दलित कविता का मूल स्वर है, जिसका तेवर विद्रोही और प्रतिशोधात्मक है। हिन्दी दलित कविता समय के दौर में दलित आंदोलन को स्थायित्व प्रदान करने वाली कविता है। नारी का भी उत्पीड़न एक लम्बे समय से हो रहा है, परन्तु दलित समाज की नारी और गैर दलित समाज की नारी की स्थिति और दशा में काफी अन्तर है। जहाँ तक शोषण और उत्पीड़न का प्रश्न है वह दोनों क्षेत्रों से आयी नारी झेल रही है पर इस उत्पीड़न की प्रकृति और सुविधाओं के धरातल पर दोनों समान नहीं मानी जा सकती। फिर भी नारी किसी न किसी रूप में दलित ही है।

दलित कविता की भावभूमि और विचारभूमि के विस्तृत विवेचन से ही हम इस निष्कर्ष तक पहुँच सकते हैं कि यह कविता मुख्यधारा कविता से भिन्न है। अतः स्पष्ट रूप से दलित शब्द, अर्थ, परिभाषा, भाषा, भारतीय सामाजिक व्यवस्था में दलितों की

स्थिति, अस्मिता, चेतना आदि की अभिव्यक्ति मुख्यधारा कविता से बिलकुल अलग है। दलित कविता को सही ढंग से परखने के लिए उसकी भावभूमि और विचारभूमि पर विवेचन किया है। दलित कविता की भावभूमि को सही ढंग से विवेचन करने से लोकगीत विशेषकर परंपरागत दलित गीत का महत्व सर्वाधिक है; क्योंकि दलित कविता का मूल प्रतिरोधात्मक सांस्कृतिक स्वर इन्हीं गीतों में मिलता है। अतः ऐसा माना जा सकता है कि इन्हीं दलित गीतों से दलित कविता का आरंभ हुआ है। ये गीत मानव के नैसर्गिक ताल-लय और मौखिक वाणी से संपन्न हैं। जो हमेशा प्रकृति के साथ रहता है, खिलाफ नहीं। दलित कविता के ऐतिहासिक परिवेश के क्रमबद्ध विवेचन से यह सिद्ध होता है कि संघकालीन कृतियों, नाथ-सिद्ध, संत साहित्य से लेकर आधुनिक काल में हीरा डोम, स्वामी अछूतानन्द हरिहर, बिहारीलाल हरित आदि कवियों का योगदान दलित कविता के जड़ को मज़बूत बनाया है। इस दृष्टि से आधुनिक काल में ओमप्रकाश वाल्मीकि, मोहनदास नैमिशराय, जयप्रकाश कर्दम, कंवल भारती, सूरजपाल चौहान, पुरुषोत्तम सत्यप्रेमी, हरिकिशन सन्तोषी, माता प्रसाद, डॉ. एन सिंह, असंगघोष, मुकेश मानस आदि का नाम महत्वपूर्ण है। दलित कविता के क्षेत्र में महिलाओं का योगदान भी रहा है जैसे सुशीला टाकभौरे, रजनी तिलक, कुसुम मेघवाल, पूनम तुषामड़, कावेरी कान्ता भीमराव आदि। उल्लेखनीय है कि इसकी पृष्ठभूमि में गैर दलित कवियों का योगदान भी महत्वपूर्ण है।

दलित कविता की विचारभूमि में महात्मा गौतम बुद्ध, महात्मा फुले, बाबा साहब अंबेडकर, मार्क्स, पेरियार रामस्वामी नायकर, श्री नारायण गुरु आदि महात्माओं का योगदान दलित समाज को नया ज़ोर एवं ताकत देने में सफल निकले। दलित अस्मिता एवं चेतना के प्रचार-प्रसार में विशेष रूप से दलित पेंथर का नाम उल्लेखनीय है। दलित समाज को नया मोड देने में दलित आन्दोलन और साहित्य का महत्वपूर्ण स्थान है। इन आंदोलनों तथा साहित्य ने दलितों को अपनी अस्मिता एवं चेतना का अहसास दिलाया।

साथ में अपना हक लेने में क्रांति तथा विद्रोह करने के लिए प्रेरित किया। दलित कविता एक ऐसे सूर्योदय के लिए प्रतिबद्ध है, जो केवल दलित के लिए ही नहीं बल्कि पूरे मानव के लिए समता तथा भाईचारे का संदेश दे रही है।